ऋषभदेव : एक परिशीलन

लेखक

परम श्रद्धेय प० श्री पुष्कर मुनि जी म०

के सुशिष्य

देवेन्द्र मुनि शास्त्री, 'साहित्यरत्न'

पुस्तक प्रकाशन में अर्थ-सहयोग

१ श्री जोरावरमल जी मघराज जी कुवाड जैतपुर जि पाली
२ श्री मुलतानमल जी भीखमचन्द जी मोकलसर जि बाड़मेर
३ श्रीमती सुशीला पारसमल बोहरा जयपुर
४ श्रीमती शान्ता सिद्धेश्वर नाथ मोदी जयपुर



पुस्तक
ऋषभदेव एक परिशीलन
भूमिका
उपाध्याय अमर मुनि
लेखक
श्री देवेन्द्र मुनि
प्रकाशक
सन्मति ज्ञानपीठ
लोहामण्डी आगरा-२
प्रथम संस्करण
अप्रैल १९६७
मुद्रक
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजामण्डी आगरा-२
मू—

ऋषभदेव : एक परिशीलन

○ प्रथम खण्ड

○ ऋषभ जीवन की पृष्ठ भूमि

○

चलता निरन्तर है।

भारतीय संस्कृति के उस मूल पुरुष को, उनके जीवन-दर्शन की विभिन्न धाराओं में अवगाहन कर गहराई में समझने-परखने की आज अत्यन्त आवश्यकता

प्रकाशकीय

आर्यसंस्कृति के आदिपुरुष भगवानऋषभदेव की जीवन-गाथा कला और संस्कृति, शिक्षा और साहित्य, धर्म और राजनीति का आदि-स्रोत है। आर्य संस्कृति का वह महाप्राण व्यक्तित्व दो युगों का सन्धि-काल है, जब अक्रम से जीवन में जड़ता छा रही थी और भोगासक्ति ने जीवन को निःसत्व बना रखा था, तब ऋषभदेव कर्म-युग के आदिसूत्रधार बने, अकर्म को कर्म की ओर प्रेरित किया, भोग को योग से परिष्कृत करने की कला सिखलाई। पुरुषार्थ जगा, कला का विकास हुआ, समाज की रचना हुई, राज्य शासन का निर्माण हुआ, और धर्म एवं संस्कृति की पावन रेखाएँ आकार पाने लगी।

जैन, बौद्ध और वैदिक—तीनों परम्पराओं में भगवान ऋषभदेव की महिमा के स्वर प्रतिध्वनित होते सुनाई देते हैं और यह प्रतिध्वनि आर्य-संस्कृति की मौलिक एकता का अक्षय चिन्ह है। भले ही ऋषभदेव के विराट व्यक्तित्व को विभिन्न परम्पराओं ने विभिन्न दृष्टियों से देखा हो किन्तु उससे उनकी महानता और सर्वव्यापकता में कोई अन्तर नहीं आता। विभिन्न दिशाओं में बसने वाले यदि हिमालय या सुमेरु के विभिन्न भागों को देखकर अपनी-अपनी दृष्टि से उसका वर्णन करें तो उससे हिमालय या सुमेरु की महान सत्ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि उसकी सार्वदेशिकता का ही प्रमाण मिलता है।

आर्य संस्कृति के उस मूल पुरुष को, उनके जीवन-स्रोत की विभिन्न धाराओं में अवगाहन कर गहराई से समझने-परखने की आज अत्यन्त आवश्यकता

है। हम प्रसन्नता है कि परम श्रद्धेय प० श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के शिष्य उदीयमान साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस दिशा म यह एक महनीय प्रयत्न किया है। उन्होने अनेक ग्रन्थो का परिशीलन करके भगवान ऋषभदेव के महान कर्तृत्व को जिस सक्षेप किन्तु प्रामाणिक और तुलनात्मक शैली से प्रस्तुत किया है वह वस्तुत अभिनन्दनीय ही नही किन्तु अनुकरणीय भी है।

साथ ही अस्वस्थ होते हुए भी श्रद्धेय उपाध्याय श्री जी न भगवान आदिनाथ के महाप्राण व्यक्तित्व के विचार बिन्दु को नवीन दृष्टि-परिवेश म उपस्थित कर जो महत्वपूर्ण प्रस्तावना से ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है उसके लिए भी हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ हैं।

सन्मति ज्ञानपीठ क महत्वपूर्ण प्रकाशन आज साहित्य क्षेत्र मे अत्यधिक आदर एव गौरव प्राप्त कर रहे हैं। हमे विश्वास है कि यह प्रकाशन भी हमारी उसी गौरवमयी परम्परा की एक कडी बनेगा। पाठक इसे अधिकाधिक अपनाकर हमारा उत्साह बढायेगे। इसी आशा के साथ

मन्त्री
सन्मति ज्ञानपीठ

लेखक की कलम से



भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव जाति के विचारो पर स्थायी प्रभाव पड़ा है उनमें भगवान् ऋषभदेव का प्रमुख स्थान है। उनके अनलोढ़त व्यक्तित्व और असाधारण व अभूतपूर्व कृतित्व की छाप जन-जीवन पर बहुत ही गहरी है। आज भी अनेकों व्यक्तियो का जीवन उनके निर्मल विचारों से प्रभावित है। उनके हृदयाकाश मे चमकते हुए आकाशदीप की तरह वे सुशोभित है। जैन व जैनेतर साहित्य उनकी गौरव-गाथा से छलक रहा है। उनका विराट व्यक्तित्व सम्प्रदायवाद, पथवाद से उन्मुक्त है। वे वस्तुत मानवता के कीर्तिस्तम्भ है।

भगवान् ऋषभदेव का समय भारतीय ज्ञात इतिहास मे नही आता। उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए आगम व आगमेतर प्राच्य साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। जैन परम्परा की दृष्टि से भगवान् ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के उपसहार काल मे हुए है।[1] चौबीसवे तीर्थङ्कर भगवान् महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय असख्यात वर्ष का है।[2]

वैदिक दृष्टि मे भी ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अन्त मे हुए है और राम व कृष्ण के अवतारो से पूर्व हुए हैं।[3]

जैन साहित्य मे कुलकरों की परम्परा मे नाभि, और ऋषभ का जैसा स्थान है, वैसा ही स्थान बौद्ध परम्परा मे महासमन्त का है।[4] सामयिक परिस्थिति भी दोनो मे समान रूप से ही चित्रित हुई है। सम्भवत बौद्ध परम्परा मे ऋषभदेव का ही अपर नाम महासमन्त हो?

---

१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
(ख) कल्पसूत्र

२ कल्पसूत्र

३ जिनेन्द्र मत दर्पण भाग० १ पृ० १०

४ दीघनिकाय अग्गञ्ञसुत्त भाग-३
(ख) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग० १ प्रस्तावना पृ० २२

ऋषभदेव का चरित्र जिस प्रकार जैन और वैदिक साहित्य में विस्तार से चित्रित किया गया है वैसा बौद्ध साहित्य में नहीं हुआ। केवल कहीं-कहीं पर नाम निर्देश किया गया है। जैसे धम्मपद की उसभ पवर वीर गाथा में अस्पष्ट रीति से ऋषभदेव और महावीर का उल्लेख हुआ है।[५] बौद्धाचार्य धर्म कीर्ति ने सर्वज्ञ आप्त के उदाहरण में ऋषभ और वर्द्धमान महावीर का निर्देश किया है और बौद्धाचार्य आर्यदेव भी ऋषभदेव को ही जैन धर्म का आद्य प्रचारक मानते हैं।

आधुनिक प्रतिभासम्पन्न मूर्धन्य विचारक भी यह सत्य तथ्य निःसकोच रूप से स्वीकारने लगे हैं कि भगवान् ऋषभदेव से ही जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

डाक्टर हर्मन जेकोबी लिखते हैं कि इसमें कोई प्रमाण नहीं कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानने में एक मत है। इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की अत्यधिक सम्भावना है।[७]

प्रस्तुत प्रश्न पर चिन्तन करते हुए डाक्टर राधाकृष्णन् लिखते हैं कि "जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति का कथन करती है जो बहुत ही शताब्दियों पूर्व हुए हैं। इस बात के प्रमाण पाये जाते हैं कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की आराधना होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन धर्म वर्द्धमान महावीर और पार्श्वनाथ से भी बहुत पहले प्रचलित था।

यजुर्वेद में ऋषभदेव अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीनों तीर्थंकरों के नाम आते हैं। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे।

---

५ धम्मपद ४।

६ इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटर्ली भाग पृ ४५-७१

७ इण्डि एण्टि जिल्द ९ पृ० १६३

(ख) जैन साहित्य का इतिहास—पूर्वपीठिका पृ ५

भारतीय दर्शन का इतिहास—डाक्टर राधाकृष्णन् जिल्द १ पृ २८७

●

त्वं देव जगतां ज्योति

त्वं देव जगतां गुरु ।

त्वं देव जगतां धाता

त्वं देव जगतां पति ॥

—आचार्य जिनसेन

●

प्र स्ता व ना



अनन्त असीम व्योममण्डल से भी विराट्! अगाध अपार महासागर से भी विशाल! एक अद्भुत, एक अद्वितीय ज्योतिर्मय व्यक्तित्व! जिधर से भी देखिए, जहाँ भी देखिए, और जब भी देखिए—सहस्र-सहस्र, लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि, असंख्य अनन्त प्रकाश किरणें विकीर्ण होती दीखती। महाकाल इतिहास की गणना से परे हो गया, सख्यातीत दिन और रात गुजरते चले गए, परन्तु वह ज्योति न बुझी है, न बुझ सकेगी।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दों की सीमा मे नही, बाँधा जा सकता। प्राकृत मे, सस्कृत मे, अपभ्रंश मे, नानाविध अन्यान्य लोक-भाषाओं मे ऋषभदेव के अनेकानेक जीवन चरित्र लिखे गए है, लिखे जा रहे हैं, परन्तु उनके विराट् एव भव्य जीवन की सम्पूर्ण छवि कोई भी अंकित नही कर सका है। अनन्त आकाश मे गरुड—जैसे असंख्य विहग जीवन-भर उडान भरते रहे हैं, पर आकाश की इयत्ता का अता-पता न किसी को लगा है, न लगेगा। क्या लौकिक और क्या लोकोत्तर, क्या भौतिक और क्या आध्यात्मिक, क्या सामाजिक और क्या राष्ट्रीय, क्या नैतिक और क्या धार्मिक—सभी दृष्टियों से उनका जीवन दिव्य है, महतोमहीयान् है। हम जीवन-निर्माण की दिशा मे जब भी और जो कुछ भी पाना चाहे, उनके जीवन पर से पा सकते हैं। आवश्यकता है केवल देखने वाली दृष्टि की और उस दृष्टि को सृष्टि के रूप मे अवतरित करने की।

भगवान् ऋषभदेव मानवसस्कृति के आदि सस्कर्ता है, आदि निर्माता है। पौराणिक गाथाओं के आधार पर, वह काल, आज भी हमारे मानस-चक्षुओं के समक्ष है, जब कि मानव मात्र आकृति मे ही मानव था। अपने क्षुद्र देह की सीमा मे बधा हुआ एक मानवाकार पशु ही तो था, और क्या? न उसे लोक का पता था, न परलोक का। न उसे समाज का पता था, न परिवार का। न उसे धर्म का पता था, न अधर्म का। बिल्कुल कटा हुआ-सा अकेला

शून्य जीवन। पिता पुत्र भाई रहित पति-पत्नी—जैसा कुछ भी लोक-व्यवहार नहीं कोई भी मर्यादा नहीं। साथ रहने वाली नारी को हम भले ही आज की शिष्ट भाषा में पत्नी कह दें परन्तु सचाई तो यह है कि वह उस युग में एकमात्र नारी थी स्त्री थी और कुछ नहीं। स्त्री केवल देह है और पत्नी इससे कुछ ऊपर है। पति-पत्नी दो शरीर नहीं है जो वासना के माध्यम से एक दूसरे के साथ [illegible] नते है। वे एक सामाजिक एवं नैतिक भाव है जो बन्धन की स्वर्णरेखाओं में मर्यादाबद्ध है। और यह सब उस आदि युग में कहां था? वन की सभ्यता। अकेला व्यक्तित्व। भूख लगी तो इधर उधर गया कन्द मूल फल खा आया। प्यास लगी तो झरना का बहता पानी पी आया। अन्य किसी के लिए न लाना और न ले जाना। न भविष्य के लिए ही कुछ संग्रह। अतीत और अनागत से कट कर केवल वर्तमान से आबद्ध। अपने ही पेट की क्षुधा पिपासा से घिरा केवल व्यक्तिनिष्ठ जीवन। प्रकृति पर आश्रित वृक्षों से परिपोषित। कर्तृत्व नहीं केवल भोक्तृत्व। श्रम नहीं पुरुषार्थ नहीं। न अपने पैरों खड़ा होना और न अपने हाथों कुछ करना। मनुष्य का शरीर में नीचे क्षुधातुर पेट और ऊपर खाने वाला मुख। बीच में हाथ पैरों का कोई खास काम नहीं उत्पादक के रूप में। यह चित्र है भगवान् ऋषभदेव से पूर्व मानव सभ्यता का।

भगवान् ऋषभदेव के युग में यह वन-सभ्यता बिखर रही थी। जनसंख्या बढ़ने लगी। उपभोक्ता अधिक होते जा रहे थे परन्तु उनकी तुलना में उपभोगसामग्री अल्प। ऐसी स्थिति में संघर्ष अवश्यम्भावी था और वह हुआ भी। क्षुधातुर जनता वृक्षों के बँटवारे के लिए लड़ने लगी। सब ओर आपाधापी मच गई। भगवान् ऋषभदेव ने उक्त विषम स्थिति में अभावग्रस्त जनता का योग्य नेतृत्व किया। उन्होंने घोषणा की—अकर्म भूमि का युग समाप्त हो रहा है अब जनसमाज को कर्मभूमि युग का स्वागत करना चाहिए। प्रकृति रिक्त नहीं है। अब भी उसके अन्तर में अक्षय भण्डार छिपा पड़ा है। पुरुष हो पुरुषार्थ करो। अपने मन मस्तिष्क से सोचो-विचारो और उसे हाथों से मूर्तरूप दो श्रम में ही श्री है अन्यत्र नहीं। एक मुख है खाने वाला तो हाथ दो है खिलाने वाले। भूखा मरने का प्रश्न ही कहां है? अपने श्रम के बल पर अभाव को भाव से भर दो। भगवान् ऋषभदेव ने कृषि का सूत्रपात किया। अनेकानेक शिल्पों की अवतारणा की। कृषि और उद्योग में वह अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया कि धरती पर स्वर्ग उतर आया। कर्मयोग की वह

रसधारा बही कि उजडते और वीरान होते जन-जीवन में नव और नव-वसन्त खिल उठा, महक उठा। हे मेरे देव, यदि उस समय तुम न होते तो पता नहीं, इस मानव जाति का क्या हुआ होता ? होता क्या, मानव-मानव एक दूसरे के लिए दानव हो गया होता, एक दूसरे को जगली जानवरों की तरह खा गया होता। "बुभुक्षित कि न करोति पापम् ?"

भौतिक वैभव एव ऐश्वर्य के उत्कर्ष में एक खतरा है, वह यह कि मनुष्य स्वय को भूल जाता है, अन्धेरे में भटक जाता है। भोग में भय छिपा है, "भोगे रोगभयम्।" तन का रोग ही नहीं, मन का रोग भी। मन का रोग तन के रोग से भी अधिक भयावह है। बढती हुई मन की विकृतियां मानव को कहीं का भी नहीं छोडती—न घर का न घाट का। भगवान् ऋषभदेव ने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा। उनका गृहससार से महाभिनिष्क्रमण अपनी अन्तरात्मा को परिमार्जित एव परिष्कृत करने के लिए तो था ही, साथ ही सार्वजनीन हित का भाव भी उसके मूल में था। महापुरुषों की साधना स्व-परकल्याण की दृष्टि से द्विपर्यक होती है—"एका क्रिया द्व्यर्थकरा प्रसिद्धा।" भगवान् ऋषभदेव ने शून्य निर्जन वनों में, एकान्त गिरि-निकुञ्जों में, भयावह श्मशानों में, गगन-चुम्बी पर्वतों की शान्त नीरव गुफाओं में तप साधना की। यह तप जहाँ बाह्य रूप में ऊँचा और बहुत ऊँचा था वहाँ आभ्यन्तर रूप में गहरा और बहुत गहरा भी था। व शरीर से परे, इन्द्रियों से परे और मन से परे होते गए—होते गए, और अपने आपके निकट, अपने शुद्ध—निरजन—निर्विकार स्वरूप के समीप पहुँचते गए—पहुँचते गए। और लम्बी साधना के बाद एक दिन वह मगल क्षण आया कि अन्तर में कैवल्य ज्योति का अनन्त अक्षय-अव्याबाध महाप्रकाश जगमगा उठा, स्वमगल के साथ ही विश्वमगल का द्वार खुल गया। भगवान् ऋषभदेव तीर्थङ्कर बन गए। धर्मदेशना के रूप में उनकी अमृतवाणी का वह दिव्यनाद गूँजा कि जन-जीवन में फैलता आ रहा अन्धकार छिन्न-भिन्न होगया, सब ओर आध्यात्मिक भावों का दिव्य आलोक आलोकित हो गया।

भगवान् ऋषभदेव का जीवन समन्वय का जीवन है। वह मानवजाति के समक्ष इहलोक का आदर्श प्रस्तुत करता है, परलोक का आदर्श प्रस्तुत करता है, और प्रस्तुत करता है—इहलोक-परलोक से परे लोकोत्तरता का आदर्श। उनका जीवन-दर्शन उभयमुखी है। जहाँ वह बाह्यजीवन को परिष्कृत एव विकसित करने की बात करता है, वहाँ अन्तर्जीवन को भी विशुद्ध एव प्रबुद्ध

रखने का परामर्श देता है। उनका अध्यात्म भी निष्क्रिय जड एव एकांगी नही है वह सचेतन है प्राणवान है और देश काल एव व्यक्ति की भूमिकाओ को यथार्थ के धरातल पर स्पर्श करता है। इस सन्दर्भ मे उनके अपने ही जीवन के एक दो प्रसङ्ग हैं।

साधना-काल मे जब भगवान जगलो एव पहाडो के सूने अचलो मे एकान्त साधनारत रह रहे थे तो प्रारम्भ मे एक वर्ष तक उन्होने अन्न जल ग्रहण नही किया अनशनतप की नम्री साधना चलती रही। प्रभु के लिए तो यह सहज था परन्तु साथ मे दीक्षित होने वाले चार सहस्र साधक विचलित हो गए। वे भूख की वेदना को अधिक काल तक सहन न कर सके। भगवान् की देखादेखी कुछ दूर तक तो अनशन के पथ पर साथ साथ चले परन्तु गजराज की गति को कोई पकडे भी तो कहा तक पकडे ? सब के सब पिछडते चले गये कोई कही तो कोई कही। पिछडे ही नही पथ भ्रष्ट भी हो गये। विवेकज्ञान के अभाव मे ऐसा ही कुछ हुआ करता है—देखा-देखी साधै जोग छीजै काया बाढै रोग। भगवान् ऋषभदेव ने वर्ष समाप्त होते-होते जब यह देखा तो उनका चिन्तन मोड ले गया। उन्होने आहार ग्रहण करने का सकल्प किया अपने लिए उतना नही जितना कि भविष्य के साधको को साधना के मध्यम भाग की दृष्टि प्रदान करने के लिए। भगवान् के तत्कालीन अनक्षर चिन्तन को अक्षरबद्ध किया है—जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध तत्त्वचिन्तक महामनीषी आचार्य जिनसेन ने अपने महापुराण मे—

> न केवलमय काय कर्शनीयो मुमुक्षुभि ।
> नाऽप्युत्कटरसै पोष्यो मृष्टैरिष्टैश्च वल्भन ॥५॥
> वशे यथा स्युरक्षाणि नोत धावन्त्यनूत्पथम् ।
> तथा प्रयतितव्य स्याद् वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम् ॥६॥
> दोषनिर्हरणायेष्टा उपवासाद्युपक्रमा ।
> प्राणसन्धारणायायम् आहार सूत्रदर्शित ॥७॥
> कायक्लेशो मतस्तावन् न सक्लेशोऽस्ति यावता ।
> सक्लेशे ह्यसमाधान मार्गात् प्रच्युतिरेव च ॥८॥

—पर्व २

—मुमुक्षु साधको को यह शरीर न तो केवल कृश एव क्षीण ही करना चाहिए और न रसीले एव मधुर मन चाहे भोजनो से इसे पुष्ट ही करना चाहिए।

—जिस तरह भी ये इन्द्रियाँ साधक के वशवर्ती रहे, कुमार्ग की ओर न दौड़े, उसी तरह मध्यम वृत्ति का आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिए।

—दोषों को दूर करने के लिए उपवास आदि का उपक्रम है, और प्राण धारणा के लिए आहार का ग्रहण है, यह जैन सिद्धान्तसम्मत साधना सूत्र है।

—साधक को कायक्लेश तप उतना ही करना चाहिए, जितने से अन्तर में सक्लेश न हो। क्योंकि सक्लेश हो जाने पर चित्त समाधिस्थ नहीं रहता, उद्विग्न हो जाता है, जिसका किसी न किसी दिन यह परिणाम आता है कि साधक पथभ्रष्ट हो जाता है।

भगवान् ऋषभ के द्वितीय पुत्र महाबली बाहुबली, युद्ध में अपने ज्येष्ठ बन्धु भरतचक्रवर्ती को पराजित करके भी, राज्यासन से विरक्त हो गए। कायोत्सर्ग मुद्रा में अचल हिमाचल की तरह अविचल एकान्त वनप्रदेश में खड़े हो गए। एक वर्ष पूरा होने को आया, न अन्न का एक दाना और न पानी की एक बूँद। न हिलना, न डुलना। सचेतन भी अचेतन की तरह सर्वथा निष्प्रकम्प। कथाकारों की भाषा में मस्तक पर के केश बढ़ते-बढ़ते जटा हो गए और उनमें पक्षी नीड़ बनाकर रहने लगे। घुटनों तक ऊँचे मिट्टी के वल्मीक चढ़ गए, और उनमें विषधर सर्प निवास करने लगे। कभी-कभी सर्प वल्मीक से निकलते, सरसराते ऊपर चढ़ जाते और समग्र शरीर पर लीला-विहार करते रहते। भूमि से अंकुरित लताएँ पदयुगल को परिवेष्टित करती हुई भुजयुगल तक लिपट गई। इतना होने पर भी कैवल्य नहीं मिला, नहीं मिला। तप का ताप चरमबिन्दु पर पहुँच गया, फिर भी अन्तर का कल्मष गला नहीं, मन का मालिन्य धुला नहीं। इतनी अधिक उग्र, इतनी अधिक कठोर साधना प्रतिफल की दिशा में शून्य क्यों, यह प्रश्न हर साधक के मन पर मडराने लगा। भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी और सुन्दरी को भेजा, इसलिए कि वह बाहर से अन्दर में प्रवेश करे, अन्दर के अहं को तोड़ गिराए। ब्राह्मी और सुन्दरी के माध्यम से भगवान् ऋषभदेव का सन्देश मुखरित हुआ।

> "आज्ञापयति तातस्त्वां, ज्येष्ठार्य ! भगवानिदम्।
> हस्तिस्कन्धाधिरूढानाम् उत्पद्येत न केवलम् ॥"

—त्रिषष्टि० १।६।७८८

—हे आर्य, पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेव तुम्हें सूचित करते हैं कि हाथी पर चढ़े हुओं को केवल ज्ञान नहीं हो सकता।

कैसा हाथी ? मैं बड़ा हू अपने से छोटे बन्धुओ को कैसे वन्दन करु —यह अहङ्कार का हाथी। इसी हाथी पर से नीचे उतरना है। बाहुबली के चिन्तन ने अहं से निरह की ओर मोड लिया और ज्योही वदन के लिए कदम उठाया कि केवल ज्ञान का महाप्रकाश जगमगा उठा। उक्त उदाहरण से क्या ध्वनित होता है ? यही कि भगवान् ऋषभदेव साधना न केवल बाह्य परिवेश तक ही प्रतिबद्ध नही थे। उनकी साधनाविषयक प्रतिबद्धता बाहर की नही अन्दर की थी। उनकी साधना का मुख्य आधार तन नही मन था। मन भी क्या अन्तश्चैतन्य था। और भगवान् का यह दिव्य दर्शन जनसाधना का बीज मत्र हो गया। आदिकाल से ही जन दर्शन तन का नही मन का दर्शन है अन्तश्चैतन्य का दर्शन है। वह साधना के बाह्य पक्ष को स्वीकारता है अवश्य परन्तु अमुक सीमा तक ही। बाह्य सान्त है, अन्तर ही अनन्त है। अत अनन्त की उपलब्धि बाहर मे नही अन्दर मे है। जब जब साधक बाहर भटकता है बाहर को ही सब कुछ मान बैठता है तब-तब भगवान् ऋषभदेव के जीवन प्रसङ्ग साधक को अन्दर की ओर उन्मुख करते है हठ योग से सहज योग की ओर अग्रसर करते है।

भगवान् ऋषभदेव की निर्मल धर्मचेतना आज की भाषा मे कहे जाने वाले पन्थो—मतो—सम्प्रदायो से सर्वथा अतीत थी। उनका सत्य इन सब क्षुद्र परिवेशो मे बद्ध नही था। जब कभी प्रसग आया उन्होने सत्य के इस मर्म को स्पष्ट किया है—बिना किसी छिपाव और दुराव के। राजकुमार मरीचि भगवान् के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण कर लेता है पर समय पर ठीक तरह साध नही पाता है। तितिक्षा की कमी परीषहो के आक्रमण से विचलित हो गया तो पथ-च्युत हो गया परिव्राजक हो गया। इस पर सम्भव है, और सबने धिक्कारा हो परन्तु भगवान् सर्वतोभावेन तटस्थ रहे। मरीचि जन श्रमण-परम्परा के विपरीत परिव्राजक का बाना लिए समवसरण के द्वार पर बैठा रहता परन्तु इधर से कोई ननुनच नही। इतना ही नही एक बार भरत चक्रवर्ती के प्रश्न के समाधान मे घोषणा की कि मरीचि वर्तमान कालचक्र का अन्तिम तीर्थङ्कर होगा। श्रमण परम्परा से उत्प्रव्रजित व्यक्ति के लिए भगवान् की यह घोषणा एक गम्भीर अर्थ की ओर सकेत करती है। वेष और पन्थ की सीमाएँ सत्य की सीमा को काट नही सकती। सत्य क्षीरसागर के जल की भाँति सदा निर्मल एवं मधुर होता है चाहे वह किसी भी पात्र मे हो और जब भी कभी हो। वेष और पन्थ की सीमाओ को लाँघ कर व्यक्ति मे आज नही तो कल अभिव्यक्त होने वाले सत्य का इस प्रकार उद्घाटन करना भगवान्

ऋषभदेव की निर्मल सत्यनिष्ठा का एक अद्भुत उदाहरण है। मैं अनुभव करता हूँ, यदि कोई और होता तो ऐसी स्थिति में कुछ और ही कहता या मौन रहता। परन्तु भगवान् ऋषभदेव, देव क्या, देवाधिदेव थे। जिन्होंने पथभ्रष्ट मरीचि के धूमिल वर्तमान को नहीं, किन्तु उज्ज्वल भविष्य को ... किया और यह सत्य प्रमाणित किया कि पतित से पतित व्यक्ति भी घृणा ... नहीं है। क्या पता, वह कहाँ और कब जीवन की ऊँची-से-ऊँची ऊर्ध्व दशा को छूने लगे, आध्यात्मिक पवित्रता को पूर्णरूपेण आत्मसात् करने लगे। क्या आज हम उक्त घटना पर से अपने प्रतिपक्षी गैंग के लोगों के प्रति सद्भावना का भावादर्श नहीं ले सकते?

भगवान् ऋषभदेव जीवन के हर कोण पर उसी प्रकार दिव्य हैं, जिस प्रकार वैडूर्यरत्न। उनका जीवन आज की विषम परिस्थितियों में भी अपने निर्मल चरित्र की आभा बिखेर रहा है। सत्य की खोज में चल रहे हर यात्री के मन पर एक गहरी छाप डाल रहा है। उनका स्मरण होते ही तमसाच्छन्न जन मानस में एक दिव्य एवं सुखद प्रकाश फैल जाता है। उनके जीवन चरित्र मानव चरित्र के निर्माण के लिए हर युग में प्रेरणा स्रोत रहे हैं और रहेंगे। यही कारण है कि महाकाल के प्रवाह में कोटि-कोटि दिन और रात बह गये, परन्तु उनके जीवनलेखन को परम्परा अब भी गंगा की धारा के समान प्रवहमान है।

मुझे हार्दिक हर्ष है कि भगवान ऋषभदेव के जीवनचरित्र के मुक्ताहार में एक और सुन्दर मुक्ता पिरोया गया है। हमारे तरुण साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनि ने भगवान ऋषभदेव के चरणकमलों में अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है,और इस रूप में भगवान आदिनाथ का एक सुन्दर अनुशीलनात्मक जीवन चरित्र लिखा है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया यह प्रमाणपुरस्सर जीवनचरित्र, चरित्रग्रन्थों के सदर्भ में नवीन शैली प्रस्तुत करता है। देवेन्द्र जी का बौद्धिक उन्मेष जो नवीन आलोक पा रहा है, उसका स्पष्ट संकेत उनकी यह कृति है।

मैं शुभाशा करता हूँ, भविष्य उनका साथ दे और वे अपने अध्ययन-अनुशीलन एवं चिन्तन को और अधिक व्यापक बनाते हुए, भविष्य में और भी अधिक सुन्दर एवं विचार पूर्ण कृतियों से जैन साहित्य की श्रीवृद्धि कर यशस्वी हों।

जैन स्थानक
आगरा
१० अप्रैल, १९६७

—उपाध्याय अमर मुनि

अनुक्रम

●

श्री ऋषभपूर्वभव : एक विश्लेषण



श्रमण संस्कृति

श्रमण संस्कृति आर्यावर्त की एक विशिष्ट और महान् संस्कृति है, जो अज्ञात काल से ही विश्व को आध्यात्मिक विचारों का पाथेय प्रदान करती रही है। वे विमल विचार काल्पनिक वायवीय न होकर जीवनप्रसूत हैं, अनुभवपरिचालित हैं। डाक्टर एल पी टेसीटरी के शब्दों में—"इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान-शास्त्र के आधार पर रचे हुए हैं, यह मेरा अनुमान ही नहीं बल्कि अनुभवमूलक पूर्ण दृढविश्वास है कि ज्यों-ज्यों पदार्थविज्ञान उन्नति करता जायेगा त्यों-त्यों जैन धर्म के सिद्धान्त सत्य सिद्ध होते जायेंगे।"

एक फुलवाडी

श्रमण संस्कृति एक अद्भुत फुलवाडी है, जिसमें भक्तियोग की भव्यता, ज्ञानयोग का गौरव, कर्मयोग की कठिनता, अध्यात्म योग का आलोक, तत्त्वज्ञान की तात्पर्यशिता, दर्शन की दिव्यता, कला की कमनीयता, भाषा की प्राजलता, भावो की गम्भीरता और चरित्र-चित्रण के फूल खिल रहे हैं, महक रहे हैं, जो अपनी सहज सलौनी सुवास से जन-जन के मन को मुग्ध कर रहे हैं।

आस्तिक्य

श्रमण-संस्कृति की विचारधारा का आधार आस्तिकता है। आस्तिक और नास्तिक शब्दो को सुधी विज्ञो ने जिस प्रकार विभिन्न विधाओं मे सजोया है, पिरोया है, उसमे वह चिरचिन्त्य पहेली बनगया है। प्रस्तुत पहेली को संस्कृत व्याकरण के समर्थ आचार्य पाणिनि के

अस्तिनास्ति दिष्टं मति [1] सूत्र के रहस्य का उद्घाटन करते हुए भट्टो जी दीक्षित ने बडी खूबी के साथ सुलझाया है। उन्होने पूर्वाग्रहरहित सूत्र का निष्कप निर्भीकता के साथ प्रकाशित करते हुए कहा— जो निश्चित रूप से परलोक व पुनर्जन्म को स्वीकारता है वह आस्तिक है और जो उसे स्वीकारता नही वह नास्तिक है। [2] अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहा जाए तो पुण्य पाप स्वर्ग नरक पुनर्जन्म और इस प्रकार आत्मा के नित्यत्व मे निष्ठा रखना ही आस्तिक्य है। आस्तिक के अन्तर्मानस मे ये विचार-लहर सदा तरगित होती है कि मै कौन हूँ कहाँ से आया हूँ प्रकृत चोले का परित्याग कर कहाँ जाऊ गा और मेरी जीवन यात्रा का अन्तिम पडाव कहाँ होगा ? [3] वह आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारता है और आत्मा की सस्थिति के स्थान लोक को भी स्वीकारता है लोक मे इतस्तत परिभ्रमण के कारण कर्म को भी स्वीकारता है और कर्मो से मुक्त होने के साधनरूप क्रिया को भी। [4] श्रमण सस्कृति का यह दृढ मन्तव्य है कि अनादि अनन्त काल से आत्मा विराट् विश्व मे परिभ्रमण कर रहा है। नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देवगति मे इधर उधर घूम रहा है। गणधर गौतम की जिज्ञासा का

---

१ अष्टाध्यायी अध्याय ४ पाद ४ सू ६

२ अस्ति परलोक इत्येवमतिर्यस्य स आस्तिक नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिक। —सिद्धान्तकौमुदी (निर्णय सागर बम्बई) पृ २७३

३ (क) अत्थि मे आया उववाइए ? नत्थि मे आया उववाइए ? के अह आसी ? के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि ?

—आचाराग १।१।१। सू ३

(ख) कस्त्व कोऽह कुत आयात

का मे जननी को मे तात ?

इति परिभावय सर्वमसार

मव त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्॥

—चर्पटपजरिका—आचार्य शकर

४ से आयावादी लोगावादी कम्मावादी किरियावादी।

—आचाराग श्रु १ अ १ उ १ सू ५

समाधान करते हुए भगवान् श्री महावीर ने कहा—"ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ यह आत्मा न जन्मा हो", और ऐसा कोई भी जीव नहीं, जिसके साथ मातृ, पितृ, भ्रातृ, भगिनी, भार्या, पुत्र-पुत्री—रूप सम्बन्ध न रहा हो।[६] गौतम को सम्बोधित कर भगवान् श्री महावीर ने कहा—हे गौतम ! तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध भी आज का नहीं, चिरकाल पुराना है। चिरकाल से तू मेरे प्रति स्नेह सद्भावना रखता रहा है। मेरे गुणो का उत्कीर्तन करता रहा है। मेरी सेवा भक्ति करता रहा है, मेरा अनुसरण करता रहा है। देव व मानव भव मे एक बार नही, अपितु अनेक बार हम साथ रहे है।[७] स्पष्ट है कि साधारण सासारिक आत्मा की तरह ही श्रमण सस्कृति के आराध्यदेव तीर्थङ्कर व बुद्ध भी, तीर्थङ्कर व बुद्ध बनने के पूर्व, नाना गतियो मे भ्रमण करते रहे हे। श्रमण सस्कृति ने ब्राह्मणसस्कृति की तरह उन्हे नित्यबुद्ध व नित्यमुक्त रूप ईश्वर नही कहा है और न उन्हे ईश्वर का अवतार या अश ही कहा है। उनका जीवन प्रारम्भ मे कालीभाई की तरह काला था, उन्होने साधना के साबुन से जीवन को माँजकर किस प्रकार निखारा, इसका विशद विश्लेषण आगम व आगमेतर साहित्य मे किया गया है।

---

५ जाव कि मन्त्रपाणा उववण्णपुव्वा ?

हता गोयमा ! असतिं अदुवा अणतखुत्तो।

—भगवती सूत्र श० २, उ० ३

६ जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए, पियत्ताए, भाइत्ताए, भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्तत्ताए, धूयत्ताए, सुण्हत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हता गोयमा ! असइ अदुवा अणतखुत्ता।

—भगवती शतक १२, उद्दे० ७

७ समणे भगव महावीरे भगव गोयम आमतेत्ता एव वयासी—चिरसंसिट्ठोऽसि मे गोयमा ! चिरसथुओऽसि मे गोयमा ! चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा ! चिरजुसिओऽसि मे गोयमा ! चिराणुगओऽसि मे गोयमा ! चिराणुवत्तीसि मे गोयमा ! अणतर देवलोए अणतर माणुस्सए भवे कि पर।

—भगवती शत० १४, उ० ७

सुनहरे चित्र

श्रमण सस्कृति दो प्रधान धाराओ म प्रवाहित है। एक जैन सस्कृति और दूसरी बौद्धसस्कृति। दोनो ही धाराओ मे अपन-अपन आराध्यदेवो के पूवभवो का कथन है। जातककथा मे बुद्धघोष ने महात्मा बुद्ध के पाच सौ सैतालीस भवो का निरूपण किया है।[८] उन्होन बोधिसत्त्व के रूप मे तपस्वी राजा वृक्ष देवता गज सिंह तुरङ्ग शृगाल कुत्ता बन्दर मछली सूअर भसा चाण्डाल आदि अनेक जन्म ग्रहण किये। बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए उन्होने कसा और किस प्रकार जीवन जीया यह उनके जीवनप्रसगो के द्वारा बताया गया है। बुद्धत्व की उपलब्धिहेतु एक भव का प्रयत्न नही अपितु अनेक भवो का प्रयत्न अपेक्षित है। जन सस्कृति के समथ आचार्यो ने भी तीथङ्करो के पूवभवो के सुनहरे चित्र प्रस्तुत किये है। उन्हा ग्रयो के आधार से अगली पक्तियो मे भगवान श्री ऋषभदेव के पूवभवो का चित्रण किया जा रहा है।

किसी भी महान पुरुष के वतमान का सही मूल्याकन करने के के लिए उसकी पृष्ठभूमि को देखना अत्यन्त आवश्यक है। उससे हमे पता चलता हे कि आज के महान पुरुष की महत्ता कोई आकस्मिक घटना नही वरन जन्म जन्मान्तरो म की गई उसकी साधना का ही परिणाम है। पूवभवो का वणन उसके क्रम विकास का सूचक है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर जन इतिहास के लखको ने भगवान श्री ऋषभदेव के पूव भवा का विवेचन किया है जिनसे प्रतीत होता है कि किस प्रकार क्रमश उनकी आत्मा बलवत्तर होती गई और अन्त मे उसका श्री ऋषभदेव के रूप मे विकास सामने आया।

आवश्यकनियुक्ति आवश्यकचूर्णि आवश्यकमलयगिरिवृत्ति त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओ मे श्री ऋषभदेव के तेरह भवो का उल्लख है[९] और दिगम्बराचार्य जिनसेन ने

---

८ बौद्ध धम क्या कहता है ? —लेखक कृष्णदत्त भट्ट पृ २७

९ धण मिहुण-सुर महब्बल-ललियग य वइरजघ मिहुणे य
सोहम्म वि ज-अच्चुय चक्की सव्वट्ठ उसभे य।
—आवश्यक मलय वृत्ति पृ १५७।२

महापुराण मे व आचार्य दामनन्दी ने पुराणसारसग्रह[10] मे दस भवो का निरूपण किया है। अन्य दिगम्बर विज्ञो ने भी उन्ही का अनुकरण किया है। श्वेताम्बराचार्यो ने श्री धन्ना सार्थवाह के भव से भवो की परिगणना की है और दिगम्बराचार्यो ने महाबल के भव से उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अनेक जीवनप्रसगो मे भी अन्तर है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन भवो की जो परिगणना की गई है वह सम्यक्त्व उपलब्धि के पश्चात् की है।[11] श्री ऋषभदेव के जीव को अनादि काल के मिथ्यात्व रूपी निविड अन्धकार मे से सर्वप्रथम धन्ना (धन) सार्थवाह के भव मे मुक्ति मिली थी और सम्यग्दर्शन के अमित आलोक के दर्शन हुए थे।

[१ धन्ना सार्थवाह

भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव एक बार अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर मे धन्ना सार्थवाह बनता है।[12] उसके पास विपुल

---

१० आद्यो महाबलो ज्ञेयो ललिताङ्गस्ततोऽपर ।
वज्रजङ्घस्तथाऽऽर्यश्च श्रीधर सुविधिस्तथा ॥
अच्युतो वज्रनाभोऽहमिन्द्रश्च वृषभस्तथा ।
दशैतानि पुराणानि पुरुदेवाऽऽश्रितानि वै ॥
—पुराणसार सग्रह सर्ग० ५, श्लो० ५–६ पृ० ७४

११ सम्प्रति यथा भगवता सम्यक्त्वमवाप्त यावतो वा भवानवाप्तसम्यक्त्व ससार पर्यटितवान् ।
—आवश्यक मल० वृत्ति १५७।२

१२ तेण कालेण तेण समएण अवरविदेहवासे धणो नाम सत्थवाहो होत्था।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ११५

(ख) आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० १५८।१

(ग) आवश्यक चूर्णि पृ० १३१

(घ) तत्र चाऽऽसीत् सार्थवाहो, धनो नाम यशोधन ।
आस्पद सम्पदामेक, सरितामिव सागर ॥
—त्रिषष्टि० १।१।३६। पृ० २

वभव था सुदूर विदेशो मे वह व्यापार भी करता था। एक बार उसने यह उद्घोषणा करवाई कि जिसे वसन्तपुर व्यापारार्थ चलना है वह मेरे साथ सहर्ष चले। मैं सभी प्रकार की उसे सुविधाएं दूंगा।[13] शताधिक व्यक्ति व्यापारार्थ उसके साथ प्रस्थित हुए।[14]

धर्मघोष नामक एक जैन आचार्य भी अपने शिष्यसमुदाय सहित वसन्तपुर धर्म प्रचारार्थ जाना चाहते थे। पर पथ विकट संकटमय होने से बिना सार्थ के जाना सम्भव नहीं था। आचार्य ने जब उद्घोषणा सुनी तो श्रेष्ठी के पास गये और श्रेष्ठी के साथ चलने की भावना अभिव्यक्त की। श्रेष्ठी ने अपने भाग्य की सराहना करते हुए

---

१३ (क) सो खितिपइट्ठियातो नगरातो धणिउजण वसन्तपुर पट्ठितो घासणं करेइ जहा—जो मए सद्धि जाइ तस्साहमुदन्त वहामि त जहा— खाणेण वा पाणेण वा वत्थेण वा पत्तेण वा ओसहेण वा भेसज्जेण वा अण्णेण वा जो जेण विणा विसूरइ तेण ति।

आवश्यक मल० वृ पत्र १५८।१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पत्र ११५

(ग) सार्थवाहो धनस्तस्मिन् सकलेऽपि पुरे तत।
डिण्डिम ताडयित्वोच्च पुरुषानित्यघोषयत ॥
असौ धन सार्थवाहो वसन्तपुरमेष्यति।
य केऽप्यत्र यियासन्ति ते चलन्तु सहाऽमुना ॥
भाण्ड दास्यत्यभाण्डायाऽवाहनाय च वाहनम्।
सहाय चाऽसहायायाऽसम्बलाय च सम्बलम् ॥
दस्युभ्यस्त्रास्यते मार्गे श्वापदोपद्रवादपि।
पालयिष्यत्यसौ मन्दान् सहगान् बान्धवानिव ॥

—त्रिषष्टि० १।१।४५-४८ पृ० ३।१

१४ त च सोऊण बहवे तडियकप्पडियादो पयट्टा।

—आवश्यक मल वृ प १५८

१५ आवश्यक चूर्णि पृ १३१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति प ११५

अनुचरों को श्रमणों के लिए भोजनादि की सुविधा का पूर्ण ध्यान रखने का आदेश दिया।[१६] आचार्य श्री ने श्रमणाचार का विश्लेषण करते हुए बताया कि श्रमण के लिए औद्देशिक, नैमित्तिक, आदि सभी प्रकार का दूषित आहार निषिद्ध है। उसी समय एक अनुचर आम का टोकरा लेकर आया, श्रेष्ठी ने आम ग्रहण करने के लिए विनीत विनती की। पर, आचार्य श्री ने बताया कि श्रमण के लिए सचित्त पदार्थ भी अग्राह्य है। श्रमण के कठोर नियमों को सुनकर श्रेष्ठी अवाक् था।[१७]

आचार्य श्री भी सार्थ के साथ पथ को पार करते हुए बढ़े जा रहे थे। वर्षा ऋतु आई। आकाश में उमड-घुमड कर घनघोर घटाएँ छाने लगी एवं गम्भीर गर्जना करती हुई हजार-हजार धाराओं के रूप में बरसने लगी। उस समय सार्थ भयानक अटवी में से गुजर रहा था। मार्ग कीचड से व्याप्त था। सार्थ उसी अटवी में वर्षावास व्यतीत करने हेतु रुक गया।[१८] आचार्य श्री भी निर्दोष स्थान में स्थित हो गये।[१९]

(ग) नवर इह तेण सम गच्छो साहूण सम्पट्ठिओ।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(घ) अत्रान्तरे धर्मघोष आचार्य साधुचर्यया।
धर्मेण पावयन् पृथ्वी सार्थवाहमुपाययौ॥

—त्रिषष्ठि १।१।५१।३।१

१६ धनेन पृष्टास्त्वाचार्या समागमनकारणम्।
वसन्तपुरमेष्यामस् त्वत्सार्थेनेत्यचीकथन्॥
सार्थवाहोऽप्युवाचैवं धन्योऽद्य भगवन्नहम्।
अभिगम्या यदायाता मत्सार्थेन च यास्यथ॥

—त्रिषष्ठि १।१।५३-५४।३।१

१७. त्रिषष्ठि १।१।५५ से ६१ पृ० ३।२

१८ (क) धणसत्थवाह घोसण,
जइगमण अडवि वासठाण च।

—आवश्यक निर्युक्ति, गा०१६८

(ख) आवश्यक चूर्णि, जिन० पृ० १३१

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५

उस अटवी मे साथ को अपनी कल्पना से अधिक रुकना पडा अत साथ की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। क्षुधा से पीडित साथ अरण्य म कन्द मूलादि की अन्वेषणा कर जीवन व्यतीत करने लगा।[२]

वर्षावास के उपसंहार काल म धन्ना सार्थवाह को अकस्मात् स्मृति आई कि मेरे साथ जो आचार्य आये थे उनकी आज तक मैंने सुध नहीं ली। उनके आहार की क्या व्यवस्था है इसकी मैने जाँच नही की। कन्दमूलादि सचित्त पदार्थों का वे उपभोग नही करते। वह शीघ्र ही आचार्य के पास गया और आहार के लिए अभ्यर्थना की।[३]

(घ) सो य सत्था जाहे अडविमज्झ सम्पत्तो ताहे वासारत्तो जातो ताहे सो सत्थवाहो अतिदुग्गया पन्थ त्ति काऊण तत्थेव सत्थनिवस काउ वासावास ठितो तम्मि ठिए सव्वो सत्थो ठिओ।

—आवश्यक नियुक्ति मल० वृ प० १५८।१

(ङ) त्रिषष्टि १।१।१ ।

१६ त्रिषष्टि १।१।१ २।

२ (क) जाहे य तेसि अप्पसत्थे लयाए निट्ठिय भायण ताहे कन्दमूलाइ समुद्दिसन्ति।

—आवश्यक चूर्णि पृ ११५

(ख) जाहे य तेसि सत्थट्ठियाए भोयण निट्ठिय ताहे ते कन्दमूलफलाणि समुद्दिसिउमारद्धा।

—आवश्यक नियुक्ति मल व १५८।१

(ग) भूयस्त्वात् सार्थलोकस्य दीर्घत्वात् प्रावृषोऽपि च।
अत्रुट्यत् तत्र सर्वेषा पाथेययवसादिकम्॥
ततश्चेतस्ततस्तस्थेलु कुचेलास्तापसा इव।
खादितु कन्दमूलादि क्षधार्ता सार्थवासिन॥

—त्रिषष्टि १।१।१ ३–१ ४

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५

२१ आवश्यकनियुक्ति गा १६८।

(ङ) आवश्यकचूर्णि प १ २।

आचार्य श्री ने श्रेष्ठी को कल्प्य और अकल्प्य का परिज्ञान कराया। श्रेष्ठी ने भी कल्प्य अकल्प्य का परिज्ञान कर उत्कृष्ट भावना से प्रासुक विपुल घृत दान दिया।[22] फलस्वरूप सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई।[23]

(ग) एव काले वच्चति थोवावसेमे वासारत्ते धणस्स चिन्ता जाता—को एत्य सत्थे दुक्खितोत्ति ? ताहे सरिय जहा मए सम साहुणो आगया तेसिं कदाई न कप्पतित्ति, ते दुक्खिया महातवस्सिणो, तो तेसिं कल्ल देमि, ततो पभाए ते निमतिया।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५।

२२ वहु वोलीणे वासे चिन्ता घयदाणभासि तया।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १६८

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५।

(घ) ते भणन्ति—ज अम्ह कप्पिय होज्जा त गेण्हेज्जामो। तेण पुच्छिय भयव ! कि पुण तुब्भ कप्पइ ? साहूहिं भणिय—ज अम्ह निमित्तमकयमकारियमसकप्पियमहापवत्ताती पाकातो भिक्खामित्त ततो तेण साहूण फासुय विउल घयदाण दिन्न।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(ङ) धन्योऽह कृतकृत्योऽह, पुण्योऽहमिति चिन्तयन्।
रोमाञ्चितवपु सर्पि साधवे स स्वय ददौ॥
आनन्दाश्रु जलैं पुण्यकन्द कन्दलयन्निव।
घृतदानावसानेऽथ धनोऽवन्दत तौ मुनी॥
सर्वकल्याणससिद्धौ सिद्धमन्त्रसम तत।
वितीर्य धर्मलाभ तौ जग्मतुर्निजमाश्रयम्॥

—त्रिषष्ठि० १।१।१४०–१४२ प० ६

२३ तदानी सार्थवाहेन दानस्याऽस्य प्रभावत।
लेभे मोक्षतरोर्बीज बोधिवीज सुदुर्लभम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।१४३।प० ६

[२] उत्तरकुरु में मनुष्य

वहाँ से धन्ना सार्थवाह का जीव आयु पूर्ण कर दान के ि म उत्तरकुरुक्षेत्र में मनुष्य हुआ।

[३] सौधर्म देवलोक

वहाँ से भी आयुपूर्ण होने पर धन्ना सार्थवाह का जीव ? म देव रूप में उत्पन्न हुआ।

२४ सो अहाउय पालइत्ता तेण दाणफलेण उत्तरकुरुमणुतो
—आवश्यक चूर्णि

(ख) तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जाओ।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति

(ग) सा य अहाउय पालित्ता कालमासे कालं कि चा तेण उत्तरकुराए मणूसा जातो।
—आवश्यक मल वृत्ति

(घ) कालेन तत्र पूर्णायु कालधममुपागत।
आस्थितकान्तसुपमेषूत्तरेषु कुरुष्वसौ॥
सीतानद्य त्तरतटे जम्बूवृक्षानुपूर्वत।
उत्पेदे युग्मधर्मेण मुनिदानप्रभावत॥
—त्रिषष्ठि १।१।२२६-२

२५ (क) ततो आउक्खएण उव्वट्टिऊणं सोहम्मेकप्पे तिपलिओ देवो जाओ।
—आवश्यक चूर्णि

(ख) ततो आउक्खए सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प

(ग) आवश्यक मल वृ प १५८।१

(घ) मिथुनायु पालयित्वा धनजीवस्ततश्च स।
प्राग्जन्मदानफलत सौधर्मे त्रिदशोऽभवत्॥
—त्रिषष्ठि

[४] महाबल[२६]

वहाँ से च्यवकर धन्ना सार्थवाह का जीव पश्चिम महाविदेह के गंधिलावती विजय में वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणी के अधिपति शतबल राजा का पुत्र महाबल हुआ।[२७]

आचार्य जिनसेन[२८] व आचार्य दामनन्दी[२९] ने उसे अतिबल का

---

२६ आवश्यक चूर्णि मे आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने महाबल, ललिताङ्ग, वज्रजङ्घ, युगल, सुधर्मदेवलोक इन—पाँच भवो का वर्णन नही किया है। —लेखक

२७ ततोऽवि चविऊण इहेव जम्बुद्दीवे अवरविदेहे गन्धिलावइविजए वेयड्ढपव्वए गन्धारजणवए गन्धसमिद्धे विज्जाहर नगरे सयबलराइणो पुत्तो महाबलो नाम राया जातो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृ० प० ११६

(ग) च्युत्वा सौधर्मकल्पाच्च, विदेहेष्वपरेष्वथ।
विजये गन्धिलावत्या वैताढ्यपृथिवीधरे॥
गान्धाराख्ये जनपदे, पुरे गन्धसमृद्धके।
राज्ञ शतबलाख्यस्य विद्याधरशिरोमणे॥
भार्याया चन्द्रकान्ताया पुत्रत्वेनोदपादि स।
नाम्ना महाबल इति, बलेनाऽतिमहाबल॥

—त्रिषष्ठि १।१।२३९–२४१ प० १०।१

(घ) उत्तरकुरु सोहम्मे महाविदेहे महब्बलो राया।

—आव० नि० म० वृ० १५६।१

२८ तस्या पतिरभूत्खेन्द्रमुकुटारूढशासन।
खगेन्द्रोऽतिबलो नाम्ना प्रतिपक्षबलक्षय॥१२२॥
मनोहराङ्गी तस्याभून् प्रिया नाम्ना मनोहरा॥१३१॥
तयोर्महाबलस्यातिरभूत्सूनुर्महोदय॥१३३॥

—महापुराण पर्व ४। श्लो० १२२, १३१, १३३ पृ० ८२–८३

२९ अलकाया मनोहर्यास्तनयोऽतिबलस्य च।
महाबल इतिख्यात खेन्द्रोऽभूद् दशमे भवे॥

—पुराणसार संग्रह ५।१।१

[२] उत्तरकुरु में मनुष्य

वहाँ से धन्ना सार्थवाह का जीव आयु पूर्ण कर दान के दिव्य प्रभाव से उत्तरकुरुक्षेत्र में मनुष्य हुआ।[२४]

[३] सौधर्म देवलोक

वहाँ से भी आयुपूर्ण होने पर धन्ना सार्थवाह का जीव सौधर्म कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ।[२५]

२४ सो अहाउय पालइत्ता तेण दाणफलेण उत्तरकुरुमणुसो जाता।

—आवश्यक चूर्णि प. १३२

(ख) तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ. ११६

(ग) सो य अहाउय पालित्ता कालमासे कालं किच्चा तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जातो।

—आवश्यक मल. वृत्ति प. १५८।१

(घ) कालेन तत्र पूर्णायु कालधर्ममुपागत।
आसियतकान्तसुषमेपूत्तरेषु कुरुष्वसौ॥
सीतानद्य उत्तरतटे जम्बूवृक्षानुपूर्वत।
उत्पेदे युग्मधर्मेण मुनिदानप्रभावत॥

—त्रिषष्टि १।१।२२६–२२७ प. ९

२५ (क) ततो आउक्खएण उव्वट्टिऊए सोहम्मेकप्पे तिपलिओवमठितीओ देवो जाओ।

—आवश्यक चूर्णि पृ. १३२

(ख) ततो आउक्खए सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प. ११६।१

(ग) आवश्यक मल. वृ. प. १५८।१

(घ) मिथुनायु पालयित्वा धनजीवस्ततश्च स।
प्राग्जन्मदानफलत सौधर्मे त्रिदशोऽभवत्॥

—त्रिषष्टि १।१।२३८

[४] महाबल[२६]

वहाँ से च्यवकर धन्ना सार्थवाह का जीव पश्चिम महाविदेह के गंधिलावती विजय में वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणी के अधिपति शतबल राजा का पुत्र महाबल हुआ।[२७]

आचार्य जिनसेन[२८] व आचार्य दामनन्दी[२९] ने उसे अतिबल का

---

२६ आवश्यक चूर्णि में आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने महाबल, ललिताङ्ग, वज्रजङ्घ, युगल, सुधर्मदेवलोक इन—पाँच भवों का वर्णन नहीं किया है।
—लेखक

२७ ततोऽवि चविऊण इहेव जम्बुद्दीवे अवरविदेहे गन्धिलावइविजए वेयड्ढपव्वए गन्धारजणवए गन्धसमिद्धे विज्जाहरनगरे ' ' सयबलरण्णो पुत्तो महाबलो नाम राया जाओ।
—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृ० प० ११६

(ग) च्युत्वा सौधर्मकल्पाच्च, विदेहेष्वपरेष्वथ।
विजये गन्धिलावत्यां वैताढ्यपृथिवीधरे॥
गान्धाराख्ये जनपदे, पुरे गन्धसमृद्धके।
राज्ञः शतबलाख्यस्य विद्याधरशिरोमणेः॥
भार्यायां चन्द्रकान्तायां पुत्रत्वेनोदपादि सः।
नाम्ना महाबल इति, बलेनाऽतिमहाबलः॥
—त्रिषष्टि १।१।२३९–२४१ प० १०।१

(घ) तत्तच्चुओ सोहम्मे महाविदेहे महब्बलो राया।
—आव० नि० म० वृ० १५६।१

२८ तस्याः पतिरभूत्खेन्द्रमुकुटाघृष्टशासनः।
खगेन्द्रोऽतिबलो नाम्ना प्रतिपक्षबलक्षयः॥१२२॥
मनोहराङ्गी तस्यासून् प्रिया नाम्ना मनोहरा॥१३१॥
तयोर्महाबलस्यासीदभूत्सूनुर्महोदयः ॥१३३॥
—महापुराण पर्व ४। श्लो० १२२, १३१, १३३ पृ० ८२–८३

२९ अलकायां मनोहर्य्यामतिबलस्य च।
महाबल इतिख्यातः खेन्द्रोऽभूद् दशमे भवे॥
—पुराणसार संग्रह ५।११

पुत्र लिखा है। और आचार्य मलयगिरि[30] व आचार्य हेमचन्द्र[31] ने अतिबल का पौत्र लिखा है।

महाबल के पिता को एक बार ससार से विरक्ति हुई[32] पुत्र को राज्य दे वह स्वयं श्रमण बन गये।

एक बार सम्राट् महाबल अपने प्रमुख अमात्यो[34] के साथ राज्य

---

३ अइबलरण्णो णत्ता।

—आवश्यक नियुक्ति मल वृ १५८

३१ त्रिषष्ठिशला १।१२५

३२ अथान्येद्य रसौ राजा निर्वेद विषयेष्वगात्।
विनृष्ण कामभोगेषु प्रव्रज्याय कृतोद्यम ॥

—महापुराण जिन ४।१४१।८४

(ख) त्रिषष्ठि १।१।२५ से २६५।

३३ पुत्र राज्ये निवेश्यव स्वम शतबलस्तत ।
आचरे शमसाम्राज्यमाचार्यचरणान्तिके ॥

—त्रिषष्ठि १।१।२७४

(ख) इति निश्चित्य धीरोऽसावभिषेकपुरस्सरम्।
सूनव राज्यसर्वस्वमदितातिबलस्तदा ॥
ततो गज इवापेतबन्धनो नि सृतो गृहात्।
बहुभि खेचर साढं दीक्षा स समुपाददे ॥

—महापुराण जिन ४।१५१।१५२ पृ ८५

३४ ते स्वयम्बुद्ध सम्भिन्नमति शतमतिस्तथा।
स्वयबुद्धश्च तत्रासाञ्चक्रिरे मन्त्रिणोऽपि हि ॥

—त्रिषष्ठि १।१।२८७।११

(ख) महामतिश्च सम्भिन्नमति शतमतिस्तथा।
स्वयबुद्धश्च राज्यस्य मूलस्तम्भा इव स्थिरा ॥

—महापुराण ४।१९१।८५

सभा मे बैठे हुए मनोविनोद कर रहे थे।[३५] उनके प्रमुख चार अमात्यो मे से स्वयबुद्ध अमात्य सम्यग्दृष्टि था, सभिन्नमति, शतमति, और महामति ये मिथ्यादृष्टि थे।

स्वयबुद्ध ने देखा—सम्राट् भौतिक वैभव की चकाचौध मे जीवन के लक्ष्य को विस्मृत कर चुके है। उसने सम्राट् को सम्बोध देने हेतु धर्म के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—दया धर्म का मूल है। प्राणी की अनुकम्पा ही दया है। दया की रक्षा के लिए ही शेष गुणो का-उत्कीर्तन किया गया है। दान, शील, तप, भावना, योग, वैराग्य उस धर्म के लिंग है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ही सनातन धर्म है।[३६]

अन्य अमात्यो ने परिहास करते हुए कहा—मन्त्रिवर ! जब आत्मा ही नही है तब धर्म-कर्म का प्रश्न ही नही रहता। जिस प्रकार महुआ, गुड, जल, आदि पदार्थों को मिला देने से उनमे मादक शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के सयोग से चैतन्य

---

३५ कदाचिदथ तस्याऽऽसीद्वर्षवृद्धिदिनोत्सव ।
मङ्गलैर्गीतवादित्रनृत्यारम्भैश्च सभृत ।।
सिंहासने समासीन तदानी खचराधिपम् ।
—महापुराण० जिन० प० ५, श्लो

स्वयम्बुद्धोऽभवत्तेषु सम्यग्दर्शनशुद्धधी ।
शेषा मिथ्यादृशस्तेऽमी सर्वे स्वामिहितोद्यता ।। ४८

(ख) पुराणसार श्लो० ७, सर्ग ... १।१।१ ।

४३ कायात्मक ... भवेद्धर्मो दयाप्रात्मक ।
मिथो विरुद्धधर्मत्वात्तयोश्चिदचिदात्मनो ।।
—महापुराण पर्व ५,

उत्पन्न हो जाती है।[5] एतदर्थ ही लोक मे पृथ्वी आदि तत्त्वों से बने हुए हमारे शरीर से पृथक रहने वाला चेतना नामक कोई पदार्थ नही है। क्योकि शरीर से पृथक उसकी उपलब्धि नही होती। ससार मे जो पदार्थ प्रत्यक्ष रूप से पृथक सिद्ध नही होते उनका अस्तित्व भी आकाशकुसुमवत् माना जाता है।[36] वर्तमान के सुखो को त्याग कर भविष्य के सुखो की कल्पना करना आधी छोड़ एक को धाव ऐसा डूबा थाह न पाव की लौकिक कहावत चरितार्थ करना है।

नास्तिक मत का निरसन करते हुए स्वयबुद्ध अमात्य ने कहा—पदार्थो को जानने का साधन केवल इन्द्रिय और मन का प्रत्यक्ष ही नही अपितु अनुभव प्रत्यक्ष योगि प्रत्यक्ष अनुमान और आगम भी हैं। इन्द्रिय और मन की शक्ति अत्यन्त सीमित है। इनसे तो चार पाँच पीढ़ी के पूवज भी नही जाने जा सकते तो क्या उनका अस्तित्व भी न माना जाए? इन्द्रियाँ केवल शब्द रूप गध रस और स्पर्शात्मक मूत पदार्थों को ही जानती है और मन उन्ही पदार्थों का चिन्तन करता है। यदि कभी अमूर्त पदार्थो को जानता भी है तो आगम दृष्टि से ही। स्पष्ट है कि ससार के सभी पदाथ सिर्फ इन्द्रिय और मन से नही जाने जा सकते। आत्मा मे शब्द रूप रस गध और स्पश नही है।[37] वह अरूपी है, अतः अमूर्त तत्त्व इन्द्रियो से नही जाने जा सकते।

१३ (क) ततो—
भूतेभ्यो शरीरेभ्य समुद्भवति चेतना।
मद्याङ्गेभ्यो मदशक्तिरिव स्वयम् ॥

—त्रिषष्टि १।१।३३१

१४ ते स्वयम्बुद्ध सम्भिन्न भूतसङ्घातादिह चेतना।
स्वयबुद्धश्च तत्रासाञ्चक्रिरे मद्याङ्गेभ्यो मदशक्तिवत ॥

—महापुराण पर्व ५ श्लोक

(ख) महामतिश्च सम्भिन्नमति शतमतिस्तथा।
स्वयबुद्धश्च राज्यस्य मूलस्तम्भा इव स्थिरा ॥

—महापुराण ४।१९१।८५

आत्म-सिद्धि के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उसने कहा—स्वसवेदन से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। मै सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ—यह अनुभूति शरीर को नही होती, अतएव इस अनुभूति का कर्ता शरीर से भिन्न ही होना चाहिए।[51] सभी को यह विश्वास होता है कि मैं हूँ, पर किसी को भी यह अनुभव नहीं होता कि मैं नही हूँ।[52]

प्रत्येक इन्द्रिय को अपने विषय का ही परिज्ञान होता है, अन्य इन्द्रिय के विषय का नही। यदि आत्म-तत्त्व को न माना जाय तो सभी इन्द्रियो के विषयो का जोड रूप [सकलनात्मक] ज्ञान नही हो सकता, किन्तु पापड खाते समय स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द—इन पाँचो का सकलित ज्ञान स्पष्ट होता है। एतदर्थ इन्द्रियो के विषयो का सकलनात्मक परिज्ञान करने वाले को इन्द्रियो से पृथक् मानना होगा और वही आत्मा है।

आत्मा और शरीर एक नही है। जो चैतन्य है, वह शरीर रूप नही है और जो शरीर है, वह चैतन्य रूप नही है, क्योकि दोनो एक दूसरे से स्वभावत विसदृश है। चैतन्य चित्स्वरूप है—ज्ञान दर्शन रूप है और शरीर अचित्स्वरूप है—जड है।[53] आत्मा और शरीर का सम्बन्ध

---

५१ स्वसवेदनवेद्योऽयमात्माऽस्ति सुखदुःखवित् ।
निषेधितु बाधाभावाच्छक्यते न हि केनचित् ॥
सुखितोऽह दुःखितोऽहमिति कस्याऽपि जातुचित् ।
जायते प्रत्ययो नैव विनाऽऽत्मानमबाधित ॥
—त्रिपष्टि० १।१।३४७–३४८ । पृ० १३

५२ सर्वो ह्यात्माऽस्तित्व प्रत्येति, न नाहमस्मीति ।
—ब्रह्मभाष्य १।१।१ । आचार्य शकर

५३ कायात्मक न चैतन्य, न कायश्चेतनात्मक ।
मिथो विरुद्धधर्मत्वात्तयोश्चिदचिदात्मनो ॥
—महापुराण पर्व ५, श्लो० ५१ पृ० ९६

वस्तुत तलवार और म्यान की तरह है। आत्मा तलवार है और शरीर म्यान है।[४४]

भूतचतुष्टय से आत्मा की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है। क्योंकि जो जड़ है उससे चेतन की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वस्तुत कार्यकारणभाव और गुणगुणिभाव सजातीय पदार्थों में ही होता है [illegible] में नहीं। पुष्प गुड़ और जल के [illegible] मादक शक्ति [illegible] का उदाहरण देना भी अनुपयुक्त है क्योंकि पुष्प आदि भी [illegible] और उनसे समुत्पन्न मादक शक्ति भी जड़ है। [illegible] सजातीय द्रव्य की उत्पत्ति हुई न कि विजातीय द्रव्य [illegible]। यदि आप शरीर के साथ ही आत्मा की उत्पत्ति मानते हैं [illegible] शिशु में स्तनपान की [illegible] और प्रवृत्ति कैसे होती है? [illegible] आत्मा नित्य है फलत पूर्वभव के संस्कार [illegible]।

---

४४ [illegible] विरोधिगुण[illegible]
[illegible]निर्भासात्[illegible] ॥
—महापुराण [illegible]

४५ [illegible] घट्टे [illegible] वा।
[illegible]न्तरीभावात्[illegible] ॥
—महापुराण [illegible]

४६ एतेनैव प्रतिक्षिप्तं मदिराङ्गनिदर्शनम्।
मदिराङ्गेष्वविरोधिन्या मन्[illegible]विभावनात् ॥
—महापुराण

(ख) किञ्च पिष्टोदकादिभ्यो मदशक्तिरचेतना।
अचेतनेभ्यो जातेति दृष्टान्तवचनं कथम्
—सिद्धि[illegible] ११६

४७ विना हि पूर्वचैतन्यानुवृत्ति जातमात्रक।
अशिक्षित कथं बालो [illegible] ॥

इस प्रकार स्वयंबुद्ध के अकाट्य तर्कों से नास्तिकवादी अमात्य परास्त हो गये। सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया और महाबल राजा भी अत्यन्त आह्लादित हुआ।[48]

स्वयंबुद्ध अमात्य ने अन्य अनेक उपनयों के[49] द्वारा सम्राट् को यह बताया कि शुभ और अशुभ कृत्यों का फल भी क्रमश: शुभ और अशुभ ही होता है।[50]

वार्ता का उपसंहार करते हुए उसने कहा— राजन्! आज प्रात: मैं नन्दन वन में परिभ्रमणार्थ गया था, वहाँ दो विशिष्ट लब्धिधारी मुनिवर पधारे। मैंने उनसे आपकी अवशेष आयु के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रस्तुत की तो उन्होंने बताया कि वह एक माह की ही शेष है।[51]

---

४८ इति तद्वचनाज्जाता परिषत्सकलैव सा।
निरारेकात्मसद्भावे सम्प्रीतश्च सभापति ॥
—महापुराण ५।८६।१०१

(ख) त्रिषष्टि १।१

४६ त्रिषष्टि १।१।४००।४४२

(ख) महापुराण पर्व ५। श्लोक ८६ से २१२, पृ० १०१–११२

५० सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला हवन्ति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला हवन्ति ॥
—औपपातिक सूत्र

५१ ताभ्यां तु भवतो मासमात्रमायुर्निवेदितम्।
अतस्त्वां त्वरयाम्यद्य, धर्मायैव महामते!
—त्रिषष्टि १।१।४४६

(ख) मासमात्रावशिष्टञ्च जीवितं तस्य निश्चितु।
तदस्य श्रेयसे भद्र! घटयास्त्वमसीतक ॥
—महापुराण ५।२२१।११३

(ग) मासावसेसाऊ
—आव० नि० मल० वृ० पृ० १५८

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६

वस्तुत तलवार और म्यान की तरह है। आत्मा तलवार है और शरीर म्यान है।[४४]

भूतचतुष्टय से आत्मा की उत्पत्ति होना संभव नही है। क्योकि जो जड है उससे चेतन की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वस्तुत कार्यकारणभाव और गुणगुणिभाव सजातीय पदार्थों मे ही होता है विजातीयो मे नही। पुष्प, गुड और जल के संयोग से मादक शक्ति उत्पन्न होने का उदाहरण देना भी अनुपयुक्त है क्योकि गुड आदि भी जड है और उनसे समुत्पन्न मादक शक्ति भी जड है। यह तो सजातीय द्रव्य से ही सजातीय द्रव्य की उत्पत्ति हुई, न कि विजातीय द्रव्य की।[४५] यदि आप शरीर के साथ ही आत्मा की उत्पत्ति मानते है तो जन्मते ही शिशु मे दुग्धपान की इच्छा और प्रवृत्ति कैसे होती है?[४७] अत यह स्पष्ट है कि आत्मा है वह नित्य है फलत पूर्वभव के संस्कारों से ही ऐसा होता है।

---

४४ कायचैतन्ययोर्नैक्य विरोधिगुणयोगत ।
तयारन्तर्बहीरूपनिर्भासात्स्वामिकोशवत ॥
—महापुराण ५।५२।६६

४५ न भूतकार्यं चैतन्य घटते तद्गुणाऽपि वा ।
ततो जात्यन्तरीभावात्तद्भागेन तद्ग्रहात् ॥
—महापुराण ५।५३।६६

४६ एतेनैव प्रतिक्षिप्त मदिराङ्गनिदर्शनम् ।
मदिराङ्ग स्वविरोधिन्या मदशक्तेर्विभावनात् ॥
—महापुराण ५।६५।६८

(ख) किञ्च पिष्टोदकादिभ्यो मदशक्तिरचेतना ।
अचेतनेभ्यो जातेति दृष्टान्तश्चेतने कथम् ? ॥
—त्रिषष्टि १।१।३६१ पृ १४।१

४७ विना हि पूर्वचैतन्यानुवृत्ति जातमात्रक ।
अशिक्षित कथ बालो मुखमर्पयति स्तने ? ॥
—त्रिषष्टि १।१।३५३

(ख) आद्यन्तौ देहिनो देहौ न विना भवतस्तनू ।
पूर्वोत्तरे सविदधिष्ठानत्वान्मध्यदेहवत ॥
—महापुराण ५।६८।६८

इस प्रकार स्वयबुद्ध के अकाट्य तर्कों से नास्तिकवादी अमात्य परास्त हो गये। सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया और महाबल राजा भी अत्यन्त आह्लादित हुआ।[४८]

स्वयबुद्ध अमात्य ने अन्य अनेक उपनयो के[४९] द्वारा सम्राट् को यह बताया कि शुभ और अशुभ कृत्यो का फल भी क्रमश शुभ और अशुभ ही होता है।[५०]

वार्ता का उपसहार करते हुए उसने कहा—राजन्! आज प्रात मैं नन्दन वन मे परिभ्रमणार्थ गया था, वहाँ दो विशिष्ट लब्धिधारी मुनिवर पधारे। मैने उनसे आपकी अवशेष आयु के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की तो उन्होंने बताया कि वह एक माह की ही शेष है।[५१]

---

४८ इति तद्वचनाज्जाता परिपत्सकलैव सा।
निरारेकात्मसद्भावे सम्प्रीतश्च सभापति ॥

—महापुराण ५।८६।१०१

(ग) त्रिषष्ठि १।१

४६ त्रिषष्ठि १।१।४००।४४२

(ख) महापुराण पर्व ५। श्लोक ८६ से २१२, पृ० १०१–११२

५० सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला हवन्ति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला हवन्ति ॥

—औपपातिक सूत्र

५१ ताभ्या तु भवतो मासमात्रमायुर्निवेदितम्।
अतस्त्वा त्वरयाम्यद्य, धर्मायैव महामते!

—त्रिषष्ठि १।१।४४६

(ख) मासमात्रावशिष्टञ्च जीवित तस्य निश्चिनु।
तदस्य श्रेयसे भद्र! घटेथास्त्वमशीतक ॥

—महापुराण ५।२२१।११३

(ग) मासावसेसाऊ

—आव० नि० मल० वृ० पृ० १५८

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६

सम्राट् महाबल अमात्य के मुह से मुनि की भविष्यवाणी सुनकर सकपका गया। मृत्यु के भयानक आतङ्क से वह विह्वल हो गया। अमात्य ने निवेदन किया—राजन् ! घबराइये नहीं घबराने वाला योद्धा रणक्षेत्र मे जूझ नही सकता।

अमात्य की प्रेरणा से पुत्र को राज्यभार सँभलाकर महाबल मुनि बने।[५२] दुष्कृत्यो की आलोचना की और बावीस दिन का सथारा कर समाधि पूवक आयुष्य पूर्ण किया।[५३]

---

५२ आमेत्युदित्वा स्वसुत स्वे पदे प्रत्यतिष्ठिपत ।
महाबलस्तदाचार्यं प्रासादे प्रतिमामिव ॥
—त्रिपष्ठि १।१।४५२

(ख) सुतायातिबलाख्याय दत्वा राज्य समृद्धिमत् ।
सर्वानापृच्छ्य मन्त्र्यादीन् परं स्वात त्र्यमाश्रित ॥
—महापुराण ५।२२८।११३

५३ (क) बावीसदिवसे भत्तं पचक्खाए काउ मरिऊण ।
—आवश्यक मल वृ प १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प ११६ ।

(ग) समाहित स्मरन् पञ्चपरमेष्ठिनमस्क्रियाम् ।
द्वाविंशति दिनान् कृत्वाऽनशन स व्यपद्यत ॥
—त्रिपष्ठि १।१।४४६। पृ १७

(घ) यावज्जीव कृताहारशरीरत्यागसगर ।
गुरुसाक्षि समारुक्षद् वीरशय्याममूढधी ॥
—महापुराण ५।२३ ।११३

देहाहारपरित्यागव्रतमास्थाय धीरधी ।
परमाराधनाशुद्धि स भेजे सुसमाहित ॥
—महा ५।२३३।११४

द्वाविंशतिदिनान्येव कृतसल्लेखना विधि ।
जीवितान्ते समाधाय मन स्व परमेष्ठिषु ॥
—महा पर्व ५। श्लोक २४८। पृ ११५

इस प्रकार धन सार्थवाह का जीव, जो अब तक आध्यात्मिक विकास की प्रथम भूमिका—सम्यग् दर्शन—तक ही पहुँच पाया था, इस भव मे अधिक अग्रसर हुआ। इस बार उसने चतुर्थ गुण-स्थान से ऊपर उठ कर छठे-सातवे गुणस्थान की भूमिका पर पाँव रक्खा।

[५] ललिताङ्ग देव

महाबल का जीव ऐशान कल्प मे ललिताङ्ग देव हुआ[५४] और वह वहाँ स्वयप्रभा देवी मे अत्यधिक आसक्त बना। जब स्वयप्रभा देवी वहाँ से च्यव जाती है तब ललिताङ्ग देव उसके विरह मे आकुल-व्याकुल बन जाता है।[५५] स्वय बुद्ध अमात्य, जो इसी कल्प मे देव बना था, आकर सान्त्वना देता है।[५६] स्वयप्रभा देवी भी वहाँ से

---

५४ ईसाणे कप्पे सिरिप्पभविमाणे ललियगतो नाम देवो जातो।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० १५८

(ख) ईसाणे कप्पे सिरिप्पभेविमाणे ललियओ नाम देवो जाओ।

—आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति प० ११६

(ग) त्रिषष्ठि० १।१।४६०।४६४

(घ) देहभारमथोत्सृज्य लघूभूत इव क्षणात्।
प्रापत् स कल्पमैशानम् अनल्पसुखसन्निधिम्॥
तत्रोपपादशय्यायाम् उदपादि महोदय।
विमाने श्रीप्रभे रम्ये, ललिताङ्ग सुरोत्तम॥

—महापुराण ५।२५३-२५४।११६

५५ दल वृक्षादिव दिवस्ततोऽच्योष्ट स्वयम्प्रभा।
आयु कर्मणि हि क्षीणे, नेन्द्रोऽपि स्थातुमीश्वर॥
आक्रान्त पर्वतेनेव, कुलिशेनेव ताडित।
प्रियाच्यवनदु खेन, ललिताङ्गोऽथ मूर्च्छित॥

—त्रिषष्ठि १।१।५१५-५१६

५६ इतश्च स्वामिमरणोत्पन्नवैराग्यवासन।
स्वयम्बुद्धोऽप्यात्तदीक्ष श्रीसिद्धाचार्यसन्निधौ॥

च्यव कर मानवलोक में निर्नामिका नामक बालिका होती है और वहाँ केवली भगवान् के उपदेश से श्राविका बन कर, आयु पूर्ण कर पुनः उसी कल्प मे ललिताङ्ग देव की प्रिया स्वयंप्रभा देवी बनती है।[५७] ललिताङ्ग देव मोह की प्रबलता के कारण पुनः उसमें आसक्त बनता है।[५८] अन्त मे ललिताङ्ग देव नमस्कार महामन्त्र का जाप करते हुए आयु पूर्ण करता है।[५९]

[६] वज्रजङ्घ

वहाँ से च्यवकर ललिताङ्ग देव का जीव जम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय मे लोहार्गल नगर के अधिपति सुवर्णजंघ सम्राट की पत्नी लक्ष्मी की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ।[६] वज्रजंघ नाम दिया गया।[६१]

सुचिरं निरतीचारं पालयित्वा व्रतं सुधी ।
ऐशाने द्रढधर्मोऽयं इन्द्रसामानिकोऽभवत् ॥
स पूर्वभवसम्बन्धाद् बन्धुवत् प्रेमबन्धुर ।
आश्वासयितुमित्यूचे ललिताङ्गमुदारधी ॥

—त्रिषष्ठि १।१।५२ –५२२

५७ पल्योपमपृथक्त्वावशिष्टमायुर्यदास्य च ।
तदोत्पादि पुण्यं स्व प्रेयस्यस्य स्वयंप्रभा ॥

—महापुराण श्लो २८६ प ५ पृ ११८

५८ सा स्वयंप्रभाऽस्यासीत् परा सौहार्दभूमिका ।
चिरं मधुकरस्येव प्रसवा चूतमञ्जरी ॥

—महापुराण श्लो २८८ पर्व ५ पृ ११८

५९ नमस्कारपदान्युच्चैः अनुध्यायन्नसाध्वसः ।
साध्वसौ मुकुलीकृत्य करौ प्रायाद् दृश्यताम् ॥

—महापुराण श्लो० २५ पर्व ६ पृ० १२२

६ (क) पुक्खलावइविजए लोहग्गलणयरसामी वइरजंघो नाम राजा जाओ।

— आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति० पृ० ११६

–(ख) तसो आउक्खए चइऊण इहेव जंबुद्दीव दीवे पुक्खलावइविजए लोहग्गलनगरसामी वइरजंघो नाम राया जातो।

—आवश्यक मल० वृ १५८

महापुराणकार ने माता का नाम वसुन्धरा और पिता का नाम वज्रबाहु[६२] और नगर का नाम उत्पलखेटक दिया है।[६३]

स्वयंप्रभा देवी भी वहाँ से आयु पूर्ण कर आचार्य श्री हेमचन्द्र के अभिमतानुसार पुण्डरीकिणी नगरी के स्वामी वज्रसेन राजा की धर्मपत्नी "गुणवती" रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुई। जन्म के पश्चात् उसका नाम 'श्रीमती' रखा।[६४] आचार्य श्री जिनसेन व आचार्य

(ग) जम्बूद्वीपे तत पूर्वविदेहेष्वपसागरम् ।
महानद्यादच सीताभिधानाया उत्तरे तटे ॥
विजये पुष्कलावत्या लोहार्गलमहापुरे ।
राज्ञ सुवर्णजङ्घस्य लक्ष्म्या पत्न्या सुतोऽभवत् ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६२४–६२५

६१ अथ कन्दलितानन्दावमुष्य दिवसे शुभे ।
वज्रजङ्घ इति प्रीतौ पितरौ नाम चक्रतु ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६२६

६२ वज्रबाहु पतिस्तस्य वज्रीवाज्ञापरोऽभवत् ।
कान्ता वसुन्धरास्यासीद् द्वितीयेव वसुन्धरा ॥
तयो सूनुरभूद्देवो ललिताङ्गस्ततश्च्युत ।
वज्रजघ इति ख्याति दधदन्वर्थतां गताम् ॥
—महापुराण श्लो० २८।२६ प० ६ पृ० १२२

६३ जम्बूद्वीपे महामेरो विदेहे पूर्वदिग्गते ।
या पुष्कलावतीत्यासीत् जानभूमिर्मनोरमा ॥
स्वर्गभूमिर्विशेषा ता पुरमुत्पलखेटकम् ।
—महापुराण श्लो० २६।२७ पर्व० ६। पृ० १२२

६४ स्वयम्प्रभाऽपि दु खार्ता, कालेन कियताऽप्यथ ।
धर्मकर्मणि सलीना, व्यच्योष्ट ललिताङ्गवत् ॥
नगर्यां पुण्डरीकिण्या विजयेऽत्रैव चक्रिण ।
वज्रसेनस्य भार्याया, गुणवत्यां सुताऽभवत् ॥
सर्वलोकातिशायिन्या, श्रियाऽसौ सयुता तत ।
श्रीमतीत्यभिधानेन पितृभ्यामभ्यधीयत ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६२७–६२६

श्री दामनन्दी के मतानुसार उनके पिता का नाम 'वज्रदन्त' और माता का नाम 'लक्ष्मीमती' था।[६५]

एक बार 'श्रीमती' महल की छत पर घूम रही थी कि उसी समय सन्निकटवर्ती उद्यान में एक मुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल महोत्सव करने हेतु देवगण आकाशमार्ग से आ-जा रहे थे।[६६] आकाश मार्ग से जाते हुए देवसमूह को निहार कर श्रीमती को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई। उसने उस स्मृति को एक पट्ट पर चित्रित

(ख) नामतः श्रीमती ख्याता रूपविद्याकलागुणैः

—पुराणसार २६।१।६

६५ तस्याः पतिरभून्नाम्ना वज्रदन्तो महीपतिः।

महापुराण श्लो ५८। पर्व ६ पृ १२४

लक्ष्मीरिवास्य कान्ताङ्गी लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया ॥

—वही श्लो ५९। प ६ पृ १२४

तयोः पुत्री बभूवासौ विश्रुता श्रीमतीति या।

—वही श्लो ६ पर्व ६ पृ० १२४

(ख) पुराण सार संग्रह २५।१।६

६६ (क) ततो मनोरमोद्याने सुस्थितस्य महामुने।
उत्पन्ने केवलज्ञाने ददर्शाऽऽगच्छत सुरान् ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६३३

(ख) तदत्तदभवत्तस्याः सविधानकमीदृशम्।
यशोधरगुरोस्तस्मिन् पुरे कैवल्यसम्भवे ॥
मनोहराख्यमुद्यानम् अध्यासीन तमर्चितुम्।
देवाः सम्प्रागुरुद्धविमानाः सह सम्पदा ॥

—महापुराण श्लो ८५–८६ पर्व ६। पृ १२७

६७ दृष्ट्वा मया वान्मिरपुगतोद्दकारिणी।
जन्मान्तराणि पूर्वाणि निशास्वप्नमिवाऽस्मरत ॥

—त्रिषष्ठि १।१।६३४

(ख) देवागमे समासस्याः प्राग्जन्मस्मृतिराविरभूत्।

—महापुराण श्लो ८१ पर्व ६। पृ १२७

(ग) पुराणसार संग्रह २६–२७–१।६

किया[68] और अपने प्रति स्नेहमूर्ति पण्डिता परिचारिका को प्रदान किया। पण्डिता परिचारिका प्रस्तुत चित्रपट को लेकर राजपथ पर, जहाँ चक्रवर्ती वज्रसेन की वर्षगाँठ मनाने हेतु अनेक देशों के राजकुमार आ-जा रहे थे, खड़ी होगई।[69] वज्रजंघ राजकुमार भी, जो पूर्वभव में ललिताङ्ग देव था, वहाँ आया हुआ था। उसने ज्यों ही वह चित्र-पट्ट देखा त्योंही उसे भी पूर्वभव की स्मृति जागृत हो गई। उसने चित्रपट्ट का सारा इतिवृत्त पण्डिता परिचारिका को बताया, और पण्डिता परिचारिका ने श्रीमती को निवेदन किया।[70] श्रीमती की प्रेरणा से परिचारिका ने चक्रवर्तीसम्राट् वज्रसेन को श्रीमती और वज्रजंघ के पूर्वभव का परिचय प्रदान किया।[71] चक्रवर्ती वज्रसेन ने 'श्रीमती' का वज्रजंघ के साथ पाणिग्रहण कर दिया।[72]

---

६८ मया विलिखितं पूर्वभवसम्बन्धिपट्टकम्।
—महापुराण श्लो० १७० पर्व ६, पृ० १३२

६९. पत्निणा वज्रसेनस्य वर्षग्रन्थिरभूत् तदा।
प्रस्तावादाययुस्तत्र, भूयांसो वसुधाधवा॥
पण्डिता राजमार्गेऽथ, तमालेख्यपटं स्फुटम्।
विस्तार्य तस्थौ श्रीमत्या मनोरथमिवाऽऽत्मनम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।६४९-६५०

७० अथाऽऽरमद्वराम्बन्ध पूर्वाऽलेखि सविस्तरम्।
श्रीप्रभाधिपता साक्षात् पश्यामीवेह मामिकाम्॥
अहो स्त्रीरूपमयेदं नितरामभिरोचते।
स्वयम्प्रभाङ्गसादि विचित्राभरणोज्ज्वलम्॥
—महापुराण श्लो० १२१-१२२ पर्व ७, पृ० १४८

(ख) आमेति पण्डिताऽप्युक्ता श्रीमत्या पार्श्वमेत्य च।
तत्सर्वमाख्यत् हृदयविशल्यकरणौषधम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।६८२

७१ पितुर्व्यंजयत् तच्च, श्रीमती पण्डितामुखात्।
अस्वातन्त्र्यं कुलस्त्रीणां, धर्मो नैसर्गिको यत॥
—त्रिषष्ठि १।१।६८३

७२ तद्गिरामुदित स्वः स्तनितेनेव बर्हिण।
वज्रसेननृपो वज्रजङ्घमाजूहवत् तत॥

महापुराणकार ने भी प्रस्तुत प्रसंग को कुछ हेर फेर के साथ निरूपित किया है पर तथ्य यही है।[७३]

श्रीमती के साथ वज्रजंघ पुन भोगो मे आसक्त हुआ।[७४] सम्राट् सुवर्णजघ ने वज्रजघ को राज्य देकर स्वय दीक्षा ग्रहण की।[७५] और चक्रवर्ती वज्रसेन ने भी अपने पुत्र पुष्कलपाल को राज्य देकर दीक्षा ली।[७६] वह तीर्थङ्कर हुए।[७७] चक्रवर्ती वज्रसेन के सयम

कुमारभूवे भूपालोऽस्मत्पुत्री श्रीमतीत्यसौ।
भवत्विदानी भवतो गृहिणी पूर्वजन्मवत्॥
तथेति प्रतिपन्ने च कुमारेणोदवाह्यत्।
श्रीमती भूपति प्रीतो हरिरणोवोदधि श्रियम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।६८५ से ६८७

(ख) तत पाणौ महाबाहु वज्रजङ्घोऽग्रहीन्मुदा।
श्रीमती तन्मृदुस्पर्शसुखामीलितलोचन॥

—महापुराण श्लो० २४६ पर्व ७ पृ० १६

७३ महापुराण पर्व ६–७ पृ १२२ से १६ ।

७४ (क) विलसन् वज्रजङ्घोऽपि श्रीमत्या सह कान्तया।
उवाह लीलया राज्यमम्भोजमिव कुञ्जर॥

—त्रिषष्ठि १।१।६९१

(ख) महापुराण श्लो १–३२ पर्व ८ पृ १६७–१६६

७५ योग्य ज्ञात्वा वज्रजङ्घ स्वर्णजङ्घोऽथ भूपति।
राज्ये निवेशयामास स्वय दीक्षामुपाददे॥

—त्रिषष्ठि १।१।६९२

(ख) अभिषिच्य सुत राज्ये वज्रजङ्घमतिष्ठिपत्॥५६
स राज्यभोगनिर्विण्ण तूर्णं यमधरान्तिके।
नृपै सार्द्धं सहस्रार्द्धमितैर्दीक्षामुपाददे।

—महापुराण श्लो० ५६–५७ पर्व ८ प १७१

७६ सूनो पुष्कलपालस्य दत्वा राज्यश्रिय निजाम्।
प्राव्राजी, वज्रसेनोऽपि जज्ञे तीर्थकरश्च स॥

—त्रिषष्ठि १।१।६९०

७७ त्रिषष्ठि १।१।६९ ।

लेने के पश्चात् सीमाप्रान्तीय राजा पुष्करपाल की आज्ञा का उलघन करने लगे। वज्रजघ उसकी सहायतार्थ गया और शत्रुओ पर विजय वैजयन्ती फहराकर पुन अपनी राजधानी लौट रहा था कि उसे ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत अरण्य मे दो मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और उनके दिव्य प्रभाव से दृष्टिविष सर्प भी निर्विष हो गया है।[७८] वज्रजघ मुनियो के दर्शन हेतु गया। उपदेश सुन वैराग्य उत्पन्न हुआ।[७९] पुत्र को राज्य देकर सयम ग्रहण करूँगा, इस भावना के साथ वह वहाँ से प्रस्थान कर राजधानी पहुँचा।[८०] इधर पुत्र ने सोचा कि पिताजी जीते जी मुझे राज्य देगे नही, तदर्थ उसने उसी रात्रि को वज्रजघ के महल मे जहरीला धुआँ फैलाया, जिसकी गध से वज्रजघ और 'श्रीमती' दोनो ही मृत्यु को प्राप्त हुए।[८१]

महापुराणकार आचार्य जिनसेन ने प्रस्तुत घटना का इस रूप मे चित्रण किया है—"वज्रदन्त चक्रवर्ती ने अपने लघुभ्राता अमिततेज

---

७८ उत्पेदे केवलज्ञान, द्वयोरप्यनगारयो ।
तत्र देवागमोद्योताद् दृग्विषो निर्विषोऽभवत् ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७०२

७९ त्रिषष्ठि १।१।७०८–७०९।

८० तदिदानी पुरी गत्वा, दत्त्वा राज्य च सूनवे ।
हसस्येव गति हस श्रयिष्येऽह पितुर्गतिम् ॥
सवादिन्या व्रतादानेऽनुस्यूतमनसेव स ।
सहित श्रीमतीदेव्या, प्राप लोहार्गलपुरम् ॥
—त्रिषष्ठि १।७१०–७११

८१ पुत्तेण रज्जकखिणा वासघरे जोगधूवप्पयोगेण मारितो ।
—आव० मल० वृ० प० १५९

विषधूप व्यधात् पुत्रस्तयोस्तु सुखसुप्तयो ।
कस्त निरोद्धमीश स्याद्, गृहादग्निमिवोत्थितम् ?
तद्धूपधूमैरधिकैर्जीवाकर्षाङ्कुशैरिव ।
घ्राणप्रविष्टैस्तौ सद्यो, दम्पती मृत्युमापतु ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७१४–७१५

के पुत्र पुण्डरीक को राज्य देकर दीक्षा ली। पुण्डरीक अल्पवयस्क था अत चक्रवर्ती की पत्नी लक्ष्मी ने वज्रजंघ को सन्देश भेजा।[८२] उस सन्देश से वह सहायतार्थ प्रस्थान करता है कि मार्ग में दो चारण लब्धिधारी मुनिवरों के दर्शन होते हैं। वह उन्हें आहार दान देता है।[८३] और मुनि वज्रजंघ व श्रीमती के आगामी भावों का निरूपण

---

८२ चक्रवर्ती वन यात सपुत्रपरिवारक ।
पुण्डरीकस्तु राज्येस्मिन् पुण्डरीकानन स्थित ॥
तत्र चक्रवर्तिनो राज्य क्वाय बालोऽतिदुर्बल ।
तदय पुङ्गवधौर्ये भरे दम्यो नियोजित ॥
बालोऽयमबले चावां राज्यञ्चेदमनायकम् ।
विशीर्णप्रायमेतस्य पालन त्वयि तिष्ठते ॥
अकालहरण तस्मात् आगन्तव्य महाधिया ।
त्वयि स्वत्सन्निधानेन मुधा, राज्यमविप्लवम् ॥

—महापुराण श्लो ६५–६८ पर्व ८ पृ १७५

(ख) नगर्यां पुण्डरीकाह्व प्रतिष्ठाप्य स्वपुत्रजम् ।
प्रवव्राज नरेन्द्रोन्द्रो बहुभि क्षत्रियैरसौ ॥

—पुराणसार संग्रह दामनन्दी श्लोक० ३२ स २ पृ २४

८३ तस्मिन्नेवाह्नि सोऽह्नाय प्रस्थानमकरोत् कृती ।

—महापुराण श्लो ११८ पर्व ८ पृ १७७

(ख) चिन्तागतिमनोगत्योस्तयो श्रुत्वा तु वाचिकम् ।
निरगातां ससन्यौ तु पुरा मतिवरोदितौ ॥

—पुराणसार श्लो ३६ सर्ग २ पृ २४

८४ ततो दमधराभिख्य श्रीमानम्बरचारण ।
समं सागरसेनेन तन्निवेशमुपाययौ ॥

—महापुराण श्लो १६७ पर्व ८ प १८१

श्रद्धादिगुणसम्पत्त्या गुणवन्त्यां विशुद्धिभाक् ।
दत्त्वा विधिवदाहार पञ्चाश्चर्याण्यवाप स ॥

—महापुराण श्लो १७३ पर्व ८ प १८२

करते हुए बताते है कि सम्राट् आप आठवे भव मे तीर्थङ्कर बनेंगे।[८५] 'श्रीमती' का जीव प्रथम दानधर्म का प्रवर्तक श्रेयास होगा।[८६] मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर दोनो अत्यन्त आह्लादित होते है।

वहाँ से सम्राट् वज्रजंघ पुण्डरीकिणी नगरी जाकर महारानी को आश्वस्त करते है और उनके राज्य की सुव्यवस्था कर पुन अपने नगर लौटते हैं।[८७]

एक दिन सम्राट् का शयनागार अगर आदि सुगन्धित द्रव्यो की तीव्र गन्ध से महक रहा था। द्वारपाल उस दिन गवाक्ष खोलना भूल गया, जिसमे धूप के धुएँ के कारण श्वास रुक जाने से दोनो की मृत्यु हो गई।[८८]

(ख) दत्वा सागरसेनाय दान दमवराय च।
आदाय नवपुण्यानि सम्प्राप्तौ पुण्डरीकिणीम् ॥
—पुराणसार श्लो० ३८ सर्ग २, पृ० २४

८५ इतोऽष्टमे भवे भाविन्युपुनर्भवता भवान्।
भवितामी च तत्रैव भवे सेत्स्यन्त्यसशयम् ॥
—महापुराण श्लो० २४४। पर्व ८, पृ० १८७

८६ श्रीमती च भवत्तीर्थे दानतीर्थप्रवर्तक।
श्रेयान् भूत्वा पर श्रेय श्रयिष्यति न सशय ॥
—महापुराण श्लो० २४६ पर्व ८, पृ० १८७

८७ दृष्ट्वा देवी कुमारञ्चाप्यनुशिष्य वचोऽमृतै।
किञ्चित्कालमुषित्वात्र जग्मतु स्वपुर पुन ॥
—पुराणसार श्लोक ४० द्वि० स० पृ० २४

८८ कालागुरुकधूपाढ्ये शयितौ गर्भवेश्मनि।
मृत्वोत्तरकुरुष्वास्तामाशु दानेन दम्पती ॥
—पुराणसार श्लो० ४१ पर्व० २, पृ० २४

(ख) अथ कालागुरूद्दामधूपधूमाधिवासिते।
मणिप्रदीपकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥

[७] युगल

वहाँ से दोनो ही आयुपूर्ण कर उत्तर कुरु में युगल-युगलिनी बने।[८९] इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर ग्रन्थों मे अन्य वर्णन नही है।

महापुराण व पुराणसार के मन्तव्यानुसार उस समय उस युगल युगलिनी को सूर्य प्रभदेव के गगनगामी विमान को निहारकर जाति स्मरण होता है[९०] और उसी समय वहाँ पर लब्धिधारी मुनि आते है।[९१] नमन कर वे उनसे पूछते है कि हे प्रभो! आप कौन है और कहाँ से आये है?

तत्र वातायनद्वारपिधानादृद्धधूमके ।
केशसंस्कारधूपोद्धूमेन क्षणमूर्च्छितौ ॥
निरुद्धोच्छ्वासदौ स्थित्वात् अन्त किञ्चिदिवाकुलौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतु ॥

—महापुराण श्लो० २१ २६ २७ २८ पर्व ९ प १९२

८९ अथोत्तरकुरुष्वतावत्यन्तौ युग्मरूपिणौ ।
एकचिन्ताविपन्नाना गतिरेका हि जायते ॥

—त्रिषष्ठि १।१।७१६

(ख) मरिऊण उत्तरकुराए सभारियो मिहुणगो जातो।

—आवश्यक मल भृ पृ० १५८

(ग) मरिऊण उत्तरकुराए सभारिओ मिहुणगो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प ११६।१

९० सूयप्रभस्य देवस्य नभोयायि विमानकम् ।
दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा प्रबुद्ध प्रियया समम् ॥

—महापुराण श्लो १५ पर्व ९ पृ १९८

(ख) कदाचित्सूर्यदेवस्य दृष्ट्वा यान [यि] विमानकम् ।
अथ सस्मरतुर्जातिमन्योऽन्यप्रियदर्शिनौ ॥

—पुराणसार श्लो ४४ पर्व २ पृ २६

९१ तावच्चारणयोयु ग्म दूरादागच्छदैक्षत ।
तच्च तावनुगृह्णन्तौ व्योम्न समवतेरतु ॥

—महापुराण श्लो० १६ पर्व ९ पृ १९८

उत्तर में ज्येष्ठ मुनि ने बतलाया कि 'पूर्व भव में जिस समय तुम्हारा जीव महाबल राजा था उस समय मैं तुम्हारा स्वयंबुद्ध मन्त्री था।[१२] संयम धारण करके मैं सौधर्म स्वर्ग में स्वयंप्रभ विमान में मणिचूल नामक देव बना। वहाँ से च्युत होकर मैं पुण्डरीकिणी नगरी के राजा प्रियसेन का ज्येष्ठ पुत्र प्रीतिंकर हुआ। मेरी माता का नाम सुन्दरी है और मेरे भ्राता का नाम प्रीतिदेव है, जो सम्प्रति मेरे साथ ही है।[१३] हम दोनों ही भ्राताओं ने स्वयंप्रभ जिनराज के समीप दीक्षा लेकर तपोबल से अवधिज्ञान तथा चारण ऋद्धि प्राप्त की है।[१४] आपको यहाँ जानकर हम आपको सम्यक्त्व रूपी रत्न देने के लिए आए हैं।'

(ख) आगतो चारणौ वीक्ष्य सद्धिनावो विमानतः ।
सुधर्मा पञ्चम पप्रच्छ, क गुणाकरता कृत ?

—पुराणसार श्लो० ४४, पर्व २, पृ० २६

१२. त्वं विद्धि मां स्वयंबुद्धं यस्मात्बुद्धो महाबली ।
महाबलभवे जैन मार्गे कृतनिदर्शनम् ॥

—महापुराण श्लो० १०४, पर्व ९, पृ० १९९

(ख) तदाचार्य स्वयंबुद्धस्तवाभवं सुधीमतम् ।
सौधर्मे मणिचूलाख्यो देव आस स्वयंप्रभे ॥

—पुराणसार ४५।२।२६

१३. महापुराण श्लो० १०८-१०९ पर्व ९ पृ० १९९ ।

(ख) तच्च्युतः पुण्डरीकिण्यां सुन्दरी-प्रियसेनयोः ।
भ्राता प्रीतिसुदेवोऽयं ज्यायान् प्रीतिंकरोऽस्म्यहम् ॥

—पुराणसार ४७।२।२६

१४. स्वयंप्रभजिनोपान्ते दीक्षित्वा सानुजोऽप्यहम् ।
तपोविज्ञानमाकाशचारणत्वं तपोबलात् ॥

—महापुराण ११०।९।१९९

(ख) स्वयंप्रभार्हतः पार्श्वे दीक्षितौ चावधीक्षिकौ ।

—पुराणसार ४८।२।२६

सम्यकत्व रूपी रत्न से बढकर विश्व मे न कोई वस्तु है न हुई है और न होगी ही। इसी से भव्य प्राणियो ने मुक्ति प्राप्त की है तथा आगे प्राप्त करगे। अतएव सम्यक्त्व सबमे श्रेष्ठ है।[१५] जब देशनालब्धि और काललब्धि आदि बहिरग कारण और करण लब्धि रूप अन्तरग कारण मिलता है तभी भव्यप्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शन का पात्र बन सकता है।[१६] जो पुरुष एक अन्तर्मुहूर्त के लिए भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है वह इस ससार रूपी बेल को काट कर बहुत ही लघु कर देता है।[१७] इस प्रकार सम्यग्दर्शन के महत्व को समझाकर और दोनो को रत्नत्रय मे आद्य रत्न सम्यक्त्व को देकर वे चारणमुनि अपने स्थान चले गये।[१८]

---

१५ इतोऽन्यदुत्तर नास्ति न भूत न भविष्यति।
इह सेत्स्यन्ति सिद्धाश्च तस्मात्सम्यक्त्वमुत्तमम् ॥

—पुराणसार ४६।२।२६

१६ देशनाकाललब्ध्यादिबाह्यकारणसम्पदि।
अन्त करणसामग्र्या भव्यात्मा स्याद् विशुद्धकृत् ॥

—महापुराण ११६।६।१६६

१७ लब्धसद्दर्शनो जीवो मुहूर्तमपि पश्य य।
ससारलतिका छित्त्वा कुरुते ह्रासिनीमसौ ॥

—महापुराण १३४।६।२१

१८ दत्वा ताभ्या विरत्नाद्य गताम्बरचारिणौ।

—पुराणसार ४१।२।२६

(ख) इति प्रीतिकराचार्यवचन स प्रमाणयन्।
सजानिरादधे सम्यग्दर्शन प्रीतमानस ॥
पुनर्दर्शनमस्त्वार्य सद्धर्म मा स्म विस्मर।
इत्युक्त्वान्तर्हितौ सद्य चारणौ व्योमचारणौ ॥

—महापुराण १४८।१५७।६। पृ २ २-२ ३

[८] सौधर्मकल्प

वहाँ से वे आयु पूर्ण कर सौधर्मकल्प में देव बने।[९९] महापुराण तथा पुराणसार में उनका नाम श्रीधर देव लिखा है।[१००]

[६] जीवानन्द वैद्य

वहाँ से च्यवकर धन्नासार्थवाह का जीव जम्बूद्वीप के क्षितिप्रतिष्ठ नगर में सुविधि वैद्य का पुत्र जीवानन्द वैद्य बना।[१०१] उस समय वहाँ पाँच अन्य जीव भी उत्पन्न होते हैं। प्रथम सम्राट्पुत्र महीधर,

---

६६ ततो सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो।

—आवश्यक नियुक्ति, मल० वृ० १५८

(ख) तओ सोहम्मे कप्पे देवो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ११६।१

(ग) शेषानुरूपमायुश्च पूरयित्वा तथा युतौ।
तौ विपद्योदपद्येतां, सौधर्मे स्नेहलौ सुरौ॥

—त्रिषष्टि १।१।७१७

(घ) अन्ते गृहीतसम्यक्त्वौ मृत्वा सौधर्ममीयतु।

—पुराणसार ५१।२।२६

१०० विमाने श्रीप्रभे तत्र नित्यालोके स्फुरत्प्रभ।
स श्रीमान् वज्रजङ्घार्य श्रीधराख्य सुरोऽभवत्॥

—महापुराण १८५।६।२०६

(ख) श्रीप्रभे श्रीधरो जज्ञे आर्यो देव स्वयम्प्रभे।
सम्यक्त्वात्स्त्रैणमुज्झित्वा साऽऽर्या जात स्वयप्रभ॥

—पुराणसार ५२।२।२६

१०१ तत्तो आउक्खएण चइऊण महाविदेहवासे खितिपइट्ठिते नगरे विज्जपुत्तो जायातो।

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० १५८

(ग) आवश्यक चूर्णि० पृ० १३२।

द्वितीय मन्त्रीपुत्र सुबुद्धि तृतीय सार्थवाहपुत्र पूर्णभद्र चतुर्थ श्रेष्ठि पुत्र गुणाकर और पाँचवां ईश्वरदत्तपुत्र केशव [श्रीमती का जीव] इन छहों मे पय-पानी सा प्रेम था।[102]

अपने पिता की तरह जीवानन्द भी आयुर्वेदविद्या मे प्रवीण था।[103] उसकी प्रतिभा की तेजस्विता से सभी प्रभावित थे। एक दिन सभी स्नेही साथी वार्तालाप कर रहे थे कि वहाँ एक दीर्घतपस्वी भिक्षा के लिए आये। वे गृहस्थाश्रम मे पृथ्वीपाल राजा के पुत्र थे जिन्होंने राज्यश्री को त्यागकर उग्रतपस्या प्रारम्भ की थी। असमय व अपथ्य भोजन के सेवन से वे कृमि-कुष्ठ की भयकर व्याधि से ग्रसित हो गये थे।[104] उन्हे निहारकर सम्राट पुत्र महीधर ने कहा—मित्रवर!

---

१०२ (क) उत्तरकुरु सोहम्मे विदेह तेगिच्छियस्स तत्थ सुतो।
रायसुयसेट्ठिमच्चामत्थाहसुया वयसा से ॥
—आवश्यक नियुक्ति गा १७६

(ख) जद्दिवस तु जातो तद्दिवसमेगाहजाया से इमे चत्तारि वयसया अणुरत्ता अविरत्ता त जहा—रायपुत्तो सेट्ठिपुत्तो अमच्चपुत्तो सत्थवाहपुत्तोत्ति। ते सहसवड्ढिता सह पसुकीलिया। घणसत्थवाहजीवोऽवि महाविज्जो जातो।
—आवश्यक मल वृ प १५८

(ग) आवश्यक चूर्णि पृ १३२।

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ ११६

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।७१९ से ७२८

(च) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्रसूरि पृ २२१

१०३ विद्याक्रमकाराऽऽयुर्वेद जीवानन्दोऽपि पैतृकम्।
अष्टाङ्गमौषधीश्चाऽपि रसवीर्यविपाकत ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७२९

१०४ एकदा व्याधुरस्य जीवानन्दस्य मन्दिरे।
एतेषा तिष्ठतामेक साधुर्भिक्षार्थमाययौ॥
पृथ्वीपालस्य राज्ञ स सूनुर्नाम्ना गुणाकर।
राज्य मलमिवोत्सृज्य शमसाम्राज्यमान्दे ॥

आप अन्य की चिकित्सा करते हैं, चिकित्सा करने में कुशल भी हैं, पर मुझे अत्यन्त परिताप है कि आपके अन्तर्मानस में दया की निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित नहीं हो रही है। कृमिकुष्ठ रोग से ग्रसित मुनि को देखकर भी आप चिकित्साहेतु प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं।[१०५]

प्रत्युत्तर में जीवानन्द ने कहा—मित्र! तुम्हारा कथन सत्य है,

सरिदोघ इव ग्रीष्मातपेन तपसा कृश।
क्रमिकुष्ठाभिभूतस्य सोऽकालापथ्यभोजनात्॥
सर्वाङ्गीण कृमिकुष्ठाधिष्ठितोऽपि स भेषजम्।
ययाचे न क्वचित् कायानपेक्षा हि मुमुक्षव॥
गोमूत्रिकाविधानेन, गेहाद् गेहं परिभ्रमन्।
षष्ठस्य पारणे दृष्ट, स तैर्निजगृहाङ्गणे॥
—त्रिषष्ठि १।१।७३२ से ७३६

१०७ वेज्जसुयस्स य गेहे किमिकुट्ठोवद्दुय जइ दट्ठु।
बेंति य ते विज्जसुय करेहि एयस्स तेगिच्छं॥
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० १७०

१०६ (ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३२
(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६
(घ) ते वयसया अन्नया कयाइ तस्स विज्जस्स घरे एगतो सहिया सन्निसन्ना अच्छन्ति, तत्थ साहू महप्पा किमिकुट्ठेण गहितो भिक्खानिमित्तमइगतो, तेहि सप्पणय सहास सो विज्जो भण्णइ—तुब्भेहि नाम सव्वो लोगो खाइयव्वो, न तुब्भेहि तवस्सिस्स वा अणाहस्स वा किरिया कायव्वा।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८
(ङ) महीधर कुमारेण, स किञ्चित् परिहासिना।
जीवानन्दो निजगदे, जगदेकभिषक् तत।
अस्ति व्याधे परिज्ञान ज्ञानमस्त्यौषधस्य च।
चिकित्साकौशल चाऽस्ति, नास्ति च केवल कृपा॥
—त्रिषष्ठि १।१।७३७–७३८
(च) कल्पार्थ प्रबोधिनी पृ० २२१।

पर इस रोग की चिकित्सा के लिए जिन औषधियों की आवश्यकता है वे मेरे पास नही हैं।[१०६]

मित्रों ने कहा—बताइये किन किन औषधियों की आवश्यकता है? वे कहाँ पर उपलब्ध हो सकेगी? हम मूल्य देंगे और जसे भी होगा लाने का प्रयास करेंगे।

जीवानन्द ने कहा—रत्नकम्बल गोशीर्षचन्दन और लक्षपाक तल। पूर्व की दो औषधियाँ मेरे पास नहीं है।[१०७]

उसी क्षण वे पाँचो साथी औषध लाने के लिए प्रस्थित हुए। औषधियों की अन्वेषणा करते हुए एक श्रेष्ठी की विपणि पर पहुँचे।[१०८] श्रेष्ठी से औषधहेतु जिज्ञासा व्यक्त करने पर श्रेष्ठी ने

---

१०६ सो भणइ-करेमि किं पुण मम ओसहाणि काइ वि नत्थि।
—आवश्यक मल वृ प १९८
(ख) आवश्यक चूर्णि प १३२
(ग) चिकित्सनीय एवाऽहो! महामुनिरयं मया।
औषधानामसामग्री कितु यात्यन्तरायताम्।
—[illegible]

१०७ ते भणन्ति अम्हे मोल्लं देमो किं ओसहं? जाह
कम्बलरयणं गोसीसचन्दणं तइयं पुण जं स[illegible] स
ममवि अत्थि।
—आवश्यक मल वृ पृ० १९८
(ख) आवश्यकचूर्णि प १३२।
(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पृ ११६।
(घ) तनक लक्षपाक मे तैलमस्तीह माऽस्ति तु।
गोशीर्षचन्दन रत्नकम्बलश्चाऽऽनमन्तु तत॥
—त्रिषष्ठि १।१।७४९

१०८ ताहे मग्गिउं पवत्ता आगमिय य तेहिं जहा अमुगस्स वाणियगस्स अत्थि मोल्लेण एयाणि ते गया तस्स सगासं दो लक्खाणि वेत्त।
—आवश्यक मल वृत्ति पृ १९८

कहा—प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-एक लाख दीनार है। वे उस मूल्य को देने के लिए ज्योंही प्रस्तुत हुए, त्योंही श्रेष्ठी ने प्रश्न किया—ये अमूल्य वस्तुएँ किस लिए चाहिएँ? उन्होंने बताया—मुनि की चिकित्सा के लिए। मुनि का नाम सुनते ही श्रेष्ठी सोचने लगा कि "इन युवकों की धार्मिक निष्ठा अपूर्व है।"[109] उसने बिना मूल्य लिये औषधियाँ देदी। वे उन वस्तुओं को लेकर वैद्य के पास गये।

जीवानन्द वैद्य भी अपने स्नेही साथियों के साथ उन औषधियों को तथा मृत-गोचर्म को लेकर उद्यान में पहुंचा, जहाँ मुनि ध्यान मुद्रा में अवस्थित थे।[110] उन्होंने मुनि को वन्दन किया और उनकी स्वीकृति

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११६।

(घ) अमेष्यामो वयमिति, प्रोच्य पञ्चाऽपि तत्क्षणम्।
ते ययुर्विपणिश्रेणी रथस्थान सोऽप्यगान्मुनि ॥
रत्नकम्बल-गोशीर्षे, मूल्यमादाय यच्छ न।
इत्युक्तस्तैर्वणिग्वृद्धस्ते ददानोऽब्रवीदिदम् ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७४७-७४८

१०६ ततो वाणियगो ससंभन्ता भणति—किं देमि? ते भणन्ति—कम्बल-रयणं गोसीसचन्दणं च। तेण भण्णइ किं एएहिं कज्जं? ते भणन्ति साहुस्स किरिया कायव्वा। तेण भण्णइ—एवं, तो अलाहि मम मोल्लेण, इहरहा चेव गेण्हह, करेह साहुणो किरियं।
—आवश्यक मल० पृ० १५६

(ख) तेल्लं तेगिच्छिसुतो कम्बलगं चन्दणं च वाणियतो।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७१

(ग) आवश्यक चूर्णि, पृ० १३३

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६।

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।७५०-७५६।

११०. (क) ते विज्जसुयप्पमिइणो सव्वे घेत्तूण ताणि ओसहाणि गया साहुणो पासं जत्थ सो उज्जाणे पडिमं ठितो, पासन्ति पडिमागयं साहुं।
—आवश्यक मल० पृ० १५६

लिए बिना ही आरोग्य प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम लक्षपाक तैल से मर्दन किया। उष्णवीर्य तैल के प्रभाव से शरीरस्थ कृमियाँ बाहर निकलने लगी तो उन्होंने शीतवीर्य रत्नकम्बल से मुनि के शरीर को आच्छादित कर दिया जिससे वे शरीरस्थ कृमि रत्न-कम्बल में आ गई। इसके पश्चात् रत्न कम्बल की कृमियों को मृत-गोचर्म में स्थापित कर दिया जिसमें उनका प्राणघात न हो। उसके पश्चात् पुन मर्दन किया और रत्नकम्बल से आच्छादित करने पर मासस्थ कृमियाँ निकल आई। तृतीय बार पुन मर्दन किया और रत्नकम्बल ओढ़ा देने पर अस्थिगत कृमियाँ निकल गई। जब शरीर कृमियों से मुक्त हो गया तो उस पर गोशीर्षचन्दन का लेप किया जिससे मुनि पूर्ण स्वस्थ हो गये।[111]

मुनि की स्वस्थता देखकर छहों मित्र अत्यन्त प्रमुदित हुए। मुनि के तात्त्विक प्रवचन को सुन कर छहों को संसार से विरक्ति हुई, उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और उत्कृष्ट संयम की साधना की।[112]

---

१११ ताहे तेल्लेण सो साहू पढम अब्भिंगितो त चेव तेल्ल रोमकूवेहि सव्व अइगय तम्मि य अइगए किमिया सव्व सखुद्धा ताहे ते निग्गए, दट्ठूण कबलरयणेण सो साहू पाउत्तो त सीयल तेल्ल च उण्हवीरिय ते किमिया तत्थ लग्गा ताहे पुव्वाणिय गोकडेवर पप्फोडिय ते सव्वे पडिया ततो सो साहू चन्दणेण लित्तो जातो समासत्थो एव तिन्निवारे अब्भंगिऊण सो साहू तेहि नीरोगा कतो।
—आवश्यक मल वृ प १५६

(ख) त्रिषष्ठि १।१।७४८ से ७७६।

११२ (क) पच्छा ते सड्ढा जाया पच्छा समणा।
—आवश्यक नि मल वृत्ति पृ० १५६

(ख) ते पच्छा साहू जाता।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ ११७

(ग) ते षडप्येकदा जातसवेगा साधुसन्निधौ।
श्रीमन्तो जगृहुर्दीक्षा मर्त्यजन्मतरो फलम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।७८

महापुराण और पुराणसार में जीवानन्द वैद्य का भव नहीं बताया है। उन्होंने लिखा है कि देवलोक से च्युत होकर जम्बूद्वीपस्थ वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी में वह सुदृष्टि राजा और सुन्दरनन्दा रानी की कुक्षि से सुविधि पुत्र हुआ, और श्रीमती का जीव उसी का पुत्र केशव हुआ।[113] केशव के प्रेम के कारण प्रारम्भ में उसके पिता सुविधि ने संयम न लेकर श्रावक व्रत स्वीकार किया[114] और अन्त में दीक्षा लेकर संलेखनायुक्त समाधि मरण प्राप्त किया।[115]

[१०] अच्युत देवलोक

आयु पूर्ण कर जीवानन्द का जीव तथा अन्य साथी बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए।[116]

---

११३ श्रीधरोऽथ दिवश्च्युत्वा जम्बूद्वीपमुपाश्रिते।
प्राग्विदेहे महावत्सविषये स्वर्गसन्निभे॥
सुसीमानगरे जज्ञे सुदृष्टिनृपतेः सुतः।
मातुः सुन्दरनन्दायाः सुविधिर्नाम पुण्यधीः॥
—महापुराण श्लो० १२१-१२२ पर्व १०, पृ० २१८

(ख) स समुद्रोपमं भोगं भुक्त्वाऽतः श्रीधरश्च्युतः।
प्राग्विदेहेषु वत्साह्वे सुसीमायां पुरी॥
देव्या सुन्दरनन्दाया सुदृष्टेः सुविधिः सुतः।
तत्सूनुः केशवो नाम्ना सुन्दर्यामितरोऽभवत्॥
—पुराणसार ६१।६२।२।२८

११४ नृपस्तु सुविधिः पुत्रस्नेहाद् गार्हस्थ्यमत्यजन्।
उत्कृष्टोपासकस्थाने तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥
—महापुराण १५८।१०।२२२

(ख) सुविधिः केशवस्नेहादुत्कृष्टः श्रावकोऽभवत्।
—पुराणसार ६५।२।३०

११५ अथावसाने नैर्ग्रन्थीं प्रव्रज्यामुपसेदिवान्।
सुविधिर्विधिनाराध्य, मुक्तिमार्गमनुत्तरम्॥
—महापुराण १६६।१०।२२२

११६ साहु तिगिच्छिऊण सामन्न देवलोगगमण च।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७२

महापुराण और पुराणसार के अनुसार भी सुविधि का जीव बारहवें देवलोक मे ही उत्पन्न हुआ।[११७]

[११] वज्रनाभ

जीवानन्द का जीव देवलोक की आयु समाप्त होने पर पुष्कलावती विजय की पुण्डरीकिणी नगरी के अधिपति वज्रसेन राजा की धारिणी रानी की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ।[११८] उत्पन्न होते

(ख) अहाउय पालइत्ता तम्मूलाग पचवि जणा अच्चुए उववण्णा।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति ११७

(ग) तता अहाउय पालइत्ता सामण्ण त मूलाग पचवि जणा अच्चुए कप्पे देवा उववन्ना।

—आवश्यक मल वृ प० १५१

षडपि द्वादशे कल्पेऽच्युतनामनि तेऽभवन्।
इन्द्रसामानिकास्तादृग न सामान्यफल तप ॥

—त्रिषष्टि १।१।७८६

११७ समाधिना तनुत्यागाद् अच्युतेन्द्रोऽभवद् विभु।
द्वाविंशत्यब्धिसख्यातपरमायुर्महर्द्धिक ॥

—महापुराण १७।१।२२२

(ख) समुत्पेदेऽच्युते कल्पे प्राप्य तत्र प्रतीन्द्रताम् ॥

—पुराणसार ६६।२।३

११८ पुण्डरिगिणिए य सुया ततो सुया वयरसेणस्स।

—आवश्यक निर्युक्ति गा १७२

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ १३३।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प ११७।

(घ) ततो देवलोगातो आउक्खए चइऊण इहेव जम्बुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे पुक्खलावइविजए पुडरिगिणीए नयरीए वइरसेणरन्नो धारिणीए देवीए उदरे पढमो वइरनाभो नाम पुत्तो जाता जो पुव्वभव विज्जो आसि।

—आवश्यक मल० वृ पृ० १५६

ही माता ने चौदह महास्वप्न देखे। जन्म होने पर पुत्र का ना नाम "वज्रनाभ" रखा। पूर्व के पाँचो साथियों मे से चार क्रमश बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ, नामक उनके भ्राता हुए और एक उनका सारथी हुआ।[119]

अपने ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभ को राज्य देकर सम्राट् वज्रसेन ने सयम ग्रहण किया, उत्कृष्ट सयम की साधना कर कैवल्य प्राप्त किया तथा तीर्थ की संस्थापना कर वे तीर्थङ्कर बने।[120]

सम्राट् वज्रनाभ पूर्वभव मे मुनि की सेवा शुश्रूषा करने के फलस्वरूप षट्खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने और शेष भ्राता माण्डलिक राजा हुए।[121] दीर्घकाल तक राज्य श्री का उपभोग करने के पश्चात् अपने पूज्य पिता तीर्थङ्कर वज्रसेन के प्रभावपूर्ण प्रवचनो को सुनकर उनके मानस मे, वैराग्य का उदधि उछालें मारने लगा।

---

११९ पढमोऽत्थ वयरनाहो बाहु सुबाहू य पीढ महपीढे।

—आवश्यक नियुक्ति गा० १७३

(ख) त्रिषष्ठि० १।१।७६१ से ७६५।

(ग) आद्य पीठो महापीठ सुवाहुश्च तृतीयक।
तुर्योऽस्य महाबाहु भ्रातर पूर्ववान्धवा ॥

—पुराणसार ७०।२।३०

१२० तेसि पिया तित्थयरो निक्खता ताऽवि तत्थेव।

—आवश्यक नियुक्ति गा० १७३

१२१ (क) वइरो चक्की जाओ, तेण साहुवेयावच्चेण चक्कवट्टीभोया उदिण्णा, अवसेसा चत्तारि मडलिया रायाणो।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति ११८।१

(ख) वयरनाभो चक्कवट्टी जातो, इयरे चत्तारि मडलिया रायाणो, एव सो वयरनाभो साहुवेयावच्चप्पभावेण उप्पन्ने चक्कवट्टिभोगे भुजइ।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५६

अपने प्रिय लघु भ्राताओं तथा सारथी के साथ वज्रनाभ चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[१२२]

संयम ग्रहण करने के पश्चात् वज्रनाभ ने आगमों का गम्भीर अनुशीलन-परिशीलन करते हुए चौदह पूर्व तक अध्ययन किया और अन्य शेष भ्राताओं ने एकादश अङ्गों का।[१२३] अध्ययन के साथ ही उन्होंने उत्कृष्ट तप तथा अनेक चामत्कारिक लब्धियाँ प्राप्त की तथा अरिहन्त सिद्ध प्रवचन प्रभृति बीस निमित्तों की आराधना से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया।[१२४]

---

१२२ इओ य तित्थयरवयरसेणस्स समोसरणं सो पिउपायमूले चउहिं वि सहोअरेहिं समं पव्वइतो।

—आवश्यक मल० वृ प १५६

(ख) दत्वस्य वज्रदत्ताय पीठाद्य भ्रातृभि सह।
सयमे स्वपितुस्तीर्थे तस्थौ सधनदेवक।

—पुराणसार ७४।२।३

१२३ पढमो चउदसपुव्वी—

—आवश्यक नियु क्ति० गा १७४

(ख) तत्थ वइरनाभेण चोद्दस पुव्वाणि अहिज्जियाणि।

—आवश्यक चूर्णि पृ १३३

(ग) तत्थ वइरनाभेण चोद्दसपुव्वा अहिज्जिया सेसावि चउरो एक्कारसंगविऊ जाया।

—आवश्यक मल वृ १६ ।१

(घ) श्रुतसागरपारीणो वज्रनाभोऽभवत् क्रमात्।
प्रत्यक्षा द्वादशाङ्गीव जङ्गमैकाङ्गता गता॥
एकादशाङ्ग या पारीणा जाता बाह्वादयोऽपि ते।
क्षयोपशमवैचित्र्याच्चित्रा हि श्रुतसम्पदः॥

त्रिषष्ठि १।१।८३६।८३७

१२४ वयरनाभेण विसुज्झपरिणामेणं वीसाहिं ठाणेहिं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं बद्धं।

—आवश्यक मल वृ प १६ ।१

(ख) त्रिषष्ठि० १।१।८८२

वीस स्थानकों की[129] और दिगम्बर ग्रन्थानुसार सोलह भावनाओं[130] की आराधना कर तीर्थङ्कर नाम गोत्र का अनुबन्धन किया। अन्त में मासिक संलेखनापूर्वक पादपोपगमसथारा कर समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वज्रनाभ के शेष चारों लघु भ्राताओं में से बाहुमुनि मुनियों की वैयावृत्य करता और सुबाहु मुनि परिश्रान्त मुनियों को विश्रामणा देता—[131] अर्थात् थके हुए मुनियों के अवयवों का मर्दन आदि करके सेवा करता। दोनों की सेवा भक्ति को निहार कर वज्रनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए

---

१२९ तत्थ पढमेण वइरणाभेण वीसाए कारणेहिं तित्थयरत्तं निवद्धं।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १३४

(ख) वइरणाभेण य विसुद्धपरिणामेण तित्थगरणामगोत्तं कम्मं बद्ध ति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११८

१३०. इत्यमूनि महार्वार्या मुनिश्चिरमभावयत्।
तीर्थकृत्त्वस्य सम्प्राप्तौ कारणान्येष षोडश॥

—महापुराण ७८।११।२३४

(ख) जगदर्श्यपण्यानि त्रैलोक्यक्षोभणानि च।
कारणानि च जैनस्य भावयामास षोडश॥

—पुराणसार ७।२।३२

१३१ (क) तत्थ बाहू सो तेसिं सव्वेसिं वेयावच्चं करेति।
जो सो सुबाहू, सो भगवन्ताणं किंतिकम्मं करेति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३

(ख) [illegible] बाहू तेसिं वेयावच्चं करेति, जो सुबाहू सो साहूणो [illegible]ति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० २१८

[illegible] तंमि अन्नासि च साहूणं वेयावच्चं करेइ, जो [illegible] साहूणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल० वृत्ति०

जैनसस्कृति की तरह ही बौद्धसस्कृति ने भी बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए दान शील नष्कर्म्य प्रज्ञा वीर्य शान्ति सत्य अधिष्ठान [दृढ निश्चय] मत्री उपेक्षा [सुख दुख मे समस्थिति] दस पारमिताए [पाली रूप पारमी] अपनाना आवश्यक माना है।[१२८] दस पारमिताओ और बीसस्थानो मे भी अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रमण सस्कृति की दोनो ही धाराओ ने तीर्थङ्कर व बुद्ध बनने के लिए पूर्वभवो म ही आत्म मन्थन चित्तमंथन गुणो का उत्कीर्तन तथा गुणो का धारण करना आवश्यक ही नही अनिवार्य माना है।

वज्रनाभ मुनि ने भी विशुद्ध परिणाम से श्वेताम्बर ग्रथानुसार

स वैयावृत्यमातेने व्रतस्थेष्वामयादिषु ।
अनात्मतरको भू वा तपसो हृदय हि तत् ॥
स तेने भक्तिमर्हत्सु पूजामर्हत्सु निश्चलाम् ।
आचार्यान् प्रश्रयी भेजे मुनीनपि बहुश्रुतान् ॥
परा प्रवचने भक्ति आप्तोपज्ञे ततान स ।
न पारयति रागादीन् विजेतु सन्ततानस ॥
अवश्यमवशोऽ प्येष वशी स्वावश्यक दधौ ।
षड्भेद देशकालादिसव्यपेक्षमनूनयन् ॥
माग प्रकाशयामास तपोज्ञानादिदीधिती ।
दधानोऽसौ मुनीनेनो भव्याब्जाना प्रबोधक ॥
वात्सल्यमधिक चक्र स मुनिधर्मवत्सल ।
विनेयान् स्थापयन् धर्मे जिनप्रवचनाश्रितान् ॥

—महापुराण श्लोक ६८ से ७७ पर्व ११ पृ० २३३–३४

(ख) दर्शनविशुद्धिविनयसपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगसवेगी शक्तितस्त्यागतपसी सङ्घसाधुसमाधि वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचन वत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ।

—तत्त्वार्थ सूत्र अ ६ सू २३

१२८. बौद्धधम दर्शन पृ १८१–१८२।

बीस स्थानकों की[128] और दिगम्बर ग्रन्थानुसार सोलह भावनाओं[130] की आराधना कर तीर्थङ्कर नाम गोत्र का अनुबन्धन किया। अन्त में मासिक संलेखनापूर्वक पादपोपगमसंथारा कर समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वज्रनाभ के शेष चारों लघु भ्राताओं में से बाहुमुनि मुनियों की वैयावृत्य करता और सुबाहु मुनि परिश्रान्त मुनियों को विश्रामणा देता—[131] अर्थात् थके हुए मुनियों के अवयवों का मर्दन आदि करके सेवा करता। दोनों की सेवा भक्ति को निहार कर वज्रनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए

---

१२६ तत्थ वइरणाभेण वीसाए कारणेहिं तित्थयरत्तं निबद्धं।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १३४

(ख) वइरणाभेण य विसुद्धपरिणामेण तित्थगरणामगोत्तं कम्मं बद्धं ति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११८

१३०. तत्पमुनि महाधैर्या मुनिश्चिरमभावयन्।
तीर्थकृत्त्वस्य संप्राप्तौ कारणान्येव षोडश।।

—महापुराण ७८।११।२३४

(ख) जगदैश्वर्यपण्यानि त्रैलोक्यक्षोभणानि च।
कारणानि च जैनस्य भावयामास षोडश।।

—पुराणसार ७।२।३२

१३१ (क) तत्थ बाहू सो तेसिं साधूणं वेयावच्चं करेति।
जो सो सुबाहू, सो भगवन्ताणं किितिकम्मं करेति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३

(ख) तत्थ बाहू तेसिं वेयावच्चं करेति, जो सुबाहू सो साहूणो वीसामेति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११८

(ग) तत्थ बाहू तेसिं अन्नेसिं च साहूणं वेयावच्चं करेइ, जो सुबाहू सो साहूणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल० वृत्ति०

और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—तुमने सेवा और विश्रामणा के द्वारा अपने जीवन को सफल किया है।[१३२]

ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा अपने मझले भ्राताओं की प्रशंसा सुनकर पीठ महापीठ मुनि के अन्तर्मानस में ये विचार जागृत हुए कि हम स्वाध्याय आदि में निरन्तर तन्मय रहते हैं पर खेद है कि हमारी कोई प्रशंसा नहीं करता जबकि वैयावृत्य करने वालों की प्रशंसा होती है।[१३३] इस ईर्ष्याबुद्धि की तीव्रता से मिथ्यात्व आया और उन्होंने

---

१३२ एवं ते करेंति बहुरलाभो भगवं अणुवूहति—अहो सुलद्धं जम्मजीवियफलं जं साधूण वेयावच्चं कीरइत्ति परिसन्ता वा साधुणो वीसामिज्जन्ति एवं पसंसति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११८।

(ग) एवं ते करेंते भगवं वयरलाभो-अणुवूहइ अहो सुलद्धं जम्म सहलीकयं जीवियं जं साहूणं वेयावच्चं कीरइ परिस्सन्ते वा साहुणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल वृत्ति प० १६।१

(घ) अहो ! धन्याविमौ वैयावृत्यविश्रामणाकरौ।

इति बाहुसुबाहू तौ वज्रनाभस्तदाऽस्तावीत्॥

—त्रिषष्ठि १।१।९ ६

१३३ एवं पसंसिज्जन्तेसु तेसु तेसिं दोण्हमपिगल्लाणं अपत्तियं भवति अम्हे सज्झायन्ता ण पसंसिज्जामो जो करेइ सो पसंसिज्जइ।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३-१३४

(ख) एवं पसंसिज्जंतेसु तेसु तेसिं पच्छिमाणं दोण्हवि पीढमहापीढाणं अप्पत्तियं भवइ अम्हे सज्झायन्ता न पसंसिज्जामो जो करेइ सो पसंसिज्जइ सच्चो लोगववहारोत्ति।

आवश्यक मल वृ प १६।१

(ग) तौ तु पीठ-महापीठौ पर्यचिन्तयतामिति।

उपकारकरो यो हि स एवेह प्रशस्यते॥

आवामध्ययनध्यानरतावनुपकारिणौ।

को नौ प्रशंसत्यथवा कार्यकृद् गृह्यते जनः॥

—त्रिषष्ठि १।१।९०७-९ ८

स्त्री वेद का बन्धन किया। आलोचन-प्रतिक्रमण न करने पर स्वल्प दोष भी अनर्थ का कारण बन जाता है।[138]

सेवा के कारण बाहुमुनि ने चक्रवर्ती के विराट् सुखों के योग्य कर्म उपार्जित किये[139] और सुबाहु मुनि ने विश्रामणा के द्वारा लोकोत्तर बाहुबल को प्राप्त करने योग्य कर्मबन्धन किया।[140]

प्रस्तुत प्रसंग महापुराण में नहीं है।

[१२] सर्वार्थसिद्ध

आयु पूर्ण कर वज्रनाभ आदि पाँचों भाई सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए, वहाँ वे तेतीस सागरोपम तक सुख के सागर में तैरते रहे।[141]

———— , ५ शब्वो मेयव्वो ज

१३४ ~स्या तथाविधतीव्रामयवशान्मिथ्या-

(ग) ततो नवसु मासेषु दिनेष्वद्धऽपि दोषोऽनालोचिताप्रतिक्रान्तो गतेषु नैम्रबहुलाऽष्टम्यामर्द्धे
उच्चस्थेषु ग्रहेष्विन्द्रावुत्तरा —आवश्यक मल० वृ० १६०।१
सुरेन सुषुवे देवी, पुत्र युगल नदुष्कृतम् ।
—रफल कृतम् ॥

१४० बाहुजीवपीठजीवौ, च्युत्वा सर्वार्थ सिद्धत —त्रिषष्ठि १।१।६०६
कुक्षौ सुमङ्गलादेव्या युग्मत्वेनाऽवतेरतु ॥
—त्रि

(ख) बाहुणा वेयावच्चकारणेण चक्किभोगा णिव्व... —आवश्यक म० ...ठ० १।१।६०४

(ग) बाहुणा वेयावच्चकारणेण चक्किभोगा णिव्वत्तिया,
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, १२०

(घ) तत सर्वार्थसिद्धिस्थो योऽसौ व्याघ्रचर सुर ।
सुबाहुरहमिन्द्रोऽस्त च्युत्वा तद्गर्भमावसत् ॥
प्रमोदभरत प्रेमनिर्भरा बन्धुता तदा ।
तमाह्वद्भरत भावि समस्तभरताधिपम् ॥
—महापुराण १२८।१५८।१५।२३६–२३९

विश्रामणा देने से श्रीऋषभ के पुत्र बाहुबली हुए जो विशिष्ट बाहुबल के अधिपति थे।[१४१]

पीठ और महापीठ मुनि के जीवों का ईर्ष्या करने से क्रमश श्री ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप मे जन्म हुआ।[१४२]

भगवान् श्री ऋषभदेव के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व की झाँकी अगले खण्ड मे प्रस्तुत है। यहाँ तो श्रीऋषभदेव के पूर्वभवो का संक्षिप्त रेखा चित्र उपस्थित किया गया है जो पतनोत्थान का जीवित भाष्य है। श्रमणसस्कृति का यह उद्घोष रहा है कि जब आत्मा पर-परिणति से हटकर स्व-परिणति को अपनाता है तब शनैः शनैः शुद्ध बुद्ध निर्मल होता हुआ एक दिन परमात्मा बन जाता है। कर्म पाश से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त होने का नाम ही परमात्म अवस्था है।[१४३]

इस प्रकार श्रमण सस्कृति ने निजत्व मे ही जिनत्व की पावन प्रतिष्ठा कर जन-जन के अन्तर्मानस में आशा और उल्लास का सचार किया। प्रसुप्त देवत्व को जगाकर आत्मा से परमात्मा भक्त से भगवान् और नर से नारायण बनने का पवित्र सदेश दिया।

---

१४१ त्रिषष्ठि १।१।८८६–८८८।

(ख) सुबाहुणा बाहुबल।

—आवश्यक मल वृ १६२

(ग) सुबाहुणा वीसामणाए बाहुबल निव्वत्तिय।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति १२।१

१४२ त्रिषष्ठि १।१।८८८ से ८८९।

(ख) पच्छिमाहि दोहि ताग मायाए इत्थिनामगोत्त कम्मयज्जित ति।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति १२

१४३ कर्म-बद्धो भवेज्जीव कर्ममुक्तस्तथा जिन'।

प्रथम अध्याय

गृहस्थ-जीवन



महापुरुषों का देश

भारतवर्ष महापुरुषों का देश है, इस विषय में संसार का कोई भी देश या राष्ट्र भारतवर्ष की तुलना नहीं कर सकता। यह अवतारों की जन्मभूमि है, सन्तों की पुण्यभूमि है, वीरों की कर्मभूमि है, और विचारकों की प्रचार-भूमि है। यहाँ अनेक नररत्न, समाज-रत्न एवं राष्ट्ररत्न पैदा हुए हैं, जिन्होंने मानव मन की सूखी धरणी पर स्नेह की सरस सरिता प्रवाहित की। जन-जीवन में अभिनव जागृति का सचार किया। जन-मन में सयम और तप की ज्योति जगाई। अपने पवित्र चरित्र के द्वारा और तप पूत वाणी के द्वारा, कर्तव्य मार्ग में जूझने की अमर प्रेरणा दी।

युग-पुरुष

गगन-मण्डल में विचरती हुई विद्युत तरगों को पकड कर जैसे बेतार का तार उन विद्युत्तरगों को भाषित रूप देता है, अव्यक्त वाणी को व्यक्त करता है, वैसे ही समाज में या राष्ट्र में जो विचार-धाराएँ चलती हैं, उन्हें प्रत्येक विचारक अनुभव तो करता है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के अभाव में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। —॰ अनुभूति तीव्र होती है और अभिव्यक्ति भी तीव्र होती ॰ जनार्दन की अव्यक्त विचारधाराओं को बेतार के ॰खरित ही नहीं करता बल्कि उसे नूतन स्वरूप ॰उनकी विमल-वाणी में युग की समस्याओं का ॰ना है। उसके कर्म में युग का कर्म क्रियाशील ॰न्तन में युग का चिन्तन चमकता है। युग-पुरुष [illegible] ॰न-जन के मन का

परिचयरेखा



प्रथम अध्याय

गृहस्थ-जीवन



महापुरुषों का देश

भारतवर्ष महापुरुषों का देश है, इस विषय में संसार का कोई भी देश या राष्ट्र भारतवर्ष की तुलना नहीं कर सकता। यह अवतारों की जन्मभूमि है, सन्तों की पुण्यभूमि है, वीरों की कर्मभूमि है, और विचारकों की प्रचार-भूमि है। यहाँ अनेक नररत्न, समाज-रत्न एवं राष्ट्ररत्न पैदा हुए हैं, जिन्होंने मानव मन की सूखी धरणी पर स्नेह की सरस सरिता प्रवाहित की। जन-जीवन में अभिनव जागृति का संचार किया। जन-मन में संयम और तप की ज्योति जगाई। अपने पवित्र चरित्र के द्वारा और तप पूत वाणी के द्वारा, कर्तव्य मार्ग में जूझने की अमर प्रेरणा दी।

युग-पुरुष

गगन-मण्डल में विचरती हुई विद्युत तरंगों को पकड कर जैसे बेतार का तार उन विद्युततरंगों को भाषित रूप देता है, अव्यक्त वाणी को व्यक्त करता है, वैसे ही समाज में या राष्ट्र में जो विचार-धाराएँ चलती हैं, उन्हें प्रत्येक विचारक अनुभव तो करता है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के अभाव में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। युग-पुरुष की अनुभूति तीव्र होती है और अभिव्यक्ति भी तीव्र होती है। वह जनता जनार्दन की अव्यक्त विचारधाराओं को बेतार के तार की भाँति मुखरित ही नहीं करता बल्कि उसे नूतन स्वरूप प्रदान करता है। उनकी विमल-वाणी में युग की समस्याओं का समाधान निहित होता है। उसके कर्म में युग का कर्म क्रियाशील होता है और उसके चिन्तन में युग का चिन्तन चमकता है। युग-पुरुष अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व करता है। जन-जन के मन का

साधिकार नेतृत्व करता है एव वह युग की जनता को सही दिशा-दर्शन देता है। भूले भटके जीवन राहियों का पथप्रदर्शन करता है। अत वह समाज रूपी शरीर का मुख भी है और मस्तिष्क भी है।

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे ही युगपुरुष थे जिन्होंने अपने युग की भोली भाली जनता को 'सत्य शिव सुन्दरम्' का पाठ पढ़ाया जनजीवन को नया विचार नयी वाणी एव नया कर्म प्रदान किया। भोगमार्ग से हटाकर कर्ममार्ग प्रवृत्तिमार्ग और योगमार्ग पर लगाया। अज्ञानान्धकार को हटाकर ज्ञान का विमल आलोक प्रज्ज्वलित किया। मानव-संस्कृति का नव निर्माण किया। यही कारण है कि अनन्त-अतीत की धूलि भी उनके जीवन की चमक एव दमक को आच्छादित नहीं कर सकी।

भारतीय सस्कृति के आद्यनिर्माता

आज मानवसस्कृति के आद्यनिर्माता महामानव भगवान् श्री ऋषभदेव को कौन नहीं जानता? वे वर्तमान अवसर्पिणी काल-चक्र में सर्वप्रथम तीर्थङ्कर हुए हैं।[1] उन्होंने ही सर्वप्रथम पारिवारिक प्रथा समाजव्यवस्था शासनपद्धति समाजनीति और राजनीति की स्थापना की और मानवजाति को एक नया प्रकाश दिया जिसका उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

जन्म से पूर्व

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे युग में इस अवनीतल पर आये जब

---

१ (क) एत्यणं वसहेणाम अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे पढमकेवली पढमतित्थयरे, पढम धम्मवर चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

(ख) उसभे इ वा पढमराया इ वा पढमभिक्खायरे इ वा पढमजिणे इ वा पढमतित्थकरे इ वा।

—कल्पसूत्र० पुण्यविजयजी सू १९४ पृ ५७

आर्यावर्त के मानवीय जीवन मे आमूलचूल परिवर्तन हो रहा था। जीवन का ढग पूरी तरह पलट रहा था। निष्क्रिय-यौगलिक-काल समाप्त होकर कर्मयुग का प्रारम्भ होने जा रहा था। प्रतिपल, प्रतिक्षण मानव की आवश्यकताएँ तो बढ रही थी पर उस युग के जीवन निर्वाह के एक मात्र साधन कल्पवृक्षो की शक्ति क्षीण हो रही थी। साधनो की अल्पता से सघर्ष होने लगा, वाद-विवाद, लूट-खसोट और छीना-झपटी होने लगी। सग्रहबुद्धि पैदा होने लगी। स्नेह, सरलता, सौम्यता, निस्पृहता प्रभृति सद्‌गुणो मे परिस्थिति की विवशता से परिवर्तन आने लगा। अपराधी मनोभावना के बीज अकुरित होने लगे।

शासन व्यवस्था

विख्यात राजनैतिक विचारक टामस्पेन ने लिखा है, "मानव अपनी बुरी प्रवृत्तियो पर स्वय नियत्रण नही रख सका इसलिए शासन का जन्म हुआ। शासन का कार्य है व्यक्ति की बुरी प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण रखना। अच्छी प्रवृत्ति फूल की लता है, फल का वृक्ष है, जिसे बुरी प्रवृत्ति की झाडियाँ घेरती है, पनपने नही देती। शासन का काम इन झाडियो को काटना है।"[२]

प्रस्तुत सन्दर्भ के प्रकाश मे हम जैन संस्कृति की दृष्टि से देखे तो भी शासन व्यवस्था का मूल अपराध और अव्यवस्था ही है। अपराध और अव्यवस्था पर नियत्रण पाने के हेतु सामूहिक जीवन जीने के लिए मानव विवश हुआ। मानव की अन्त प्रकृति ने उसे प्रेरणा प्रदान की। उस सामूहिक व्यवस्था को 'कुल' कहा गया। कुलो का मुखिया जो प्रकृष्ट प्रतिभा सम्पन्न होता था वह 'कुलकर' कहलाने लगा। वह उन कुलो की सुव्यवस्था करता।[३]

---

२ ज्ञानोदय, वर्ष १७ अङ्क २ अगस्त १९६५, सहचिन्तन, (कन्हैयालाल मिश्र) पृ० १४४।

३ स्थानाग सूत्रवृत्ति० सू० ७६७, पत्र ५१८–१।

कुलकरों की संख्या

कुलकरों की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। स्थानाङ्ग[4] समवायाग[5] भगवती आवश्यकचूरिण[6] आवश्यकनियुक्ति[7] तथा त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र[8] मे सात कुलकरो के नाम उपलब्ध होते हैं। पउमचरिय[9] महापुराण[10] और सिद्धान्त सग्रह[11] मे चौदह के तथा

---

४ स्थानाग सूत्र वृत्ति सू ७६७ पत्र ५१८–१।

५ समवायाग १५७।

(ख) जम्बुद्दीव ण भते ! दीव भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए कइ कुलगरा होत्था ? गोयमा ! सत्त।

—भगवती श० ५ उद्द ६ सू ३

६ आवश्यक चूर्णि पत्र १२९।

७ पढमेत्थविमलवाहण चक्खुम जसम चउत्थमभिचन्दे।
तत्तो य पसेणइए मरुदेवे चेव नाभी य॥

—आवश्यक नि मल वृ गा १५२ पृ १५४

८ त्रिषष्ठि पर्व १ स २ श्लो १४२–२०६।

९ पउमचरिय उद्द० ३ श्लो ५–५५

(१) सुमति (२) प्रतिश्रुति (३) सीमङ्कर (४) सीमन्धर (५) क्षेमंकर (६) क्षेमधर (७) विमलवाहन (८) चक्षुष्मान् (९) यशस्वी (१०) अभिचन्द्र (११) चन्द्राभ (१२) प्रसेनजित् (१३) मरुदेव (१४) नाभि।

१० आद्य प्रतिश्रुति प्रोक्त द्वितीय सन्मतिर्मत।
तृतीय क्षेमकृन्नाम्ना चतुर्थ क्षेमधृन्मनु॥
सीमकृत्पचमो ज्ञेय षष्ठः सीमधृदिष्यते।
ततो विमलवाहाङ्कः चक्षुष्मानष्टमो मत॥
यशस्वान्नवमस्तस्मात् नाभिचन्द्रोऽप्यनन्तर॥
चन्द्राभोऽस्मात्पर ज्ञेयो मरुदेवस्तत परम्।
प्रसेनजित्पर तस्मा न्नाभिराजश्चतुर्दश॥

—महापुराण जिनसेनाचार्य प्रथम भाग तृतीय पर्व श्लो २२९–२३२ पृ ६६

११ सिद्धान्त संग्रह पृष्ठ १८

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[12] मे पन्द्रह के नाम मिलते हैं। सम्भवत अपेक्षा भेद से इस प्रकार हुआ हो।

कुलकरो को आदिपुराण मे 'मनु' भी कहा है।[13] वैदिक साहित्य मे कुलकरो के स्थान मे 'मनु' शब्द ही व्यवहृत हुआ है। मनुस्मृति मे स्थानाग की तरह सात मनुओ का उल्लेख है[14] तो अन्यन्त्र चौदह का भी।[15] सक्षेप मे चौदह या पन्द्रह कुलकरो को सात मे अन्तर्निहित किया जा सकता है। चौदह या पन्द्रह कुलकरो का जहाँ उल्लेख है, उसमे प्रथम छ सर्वथा नये है और ग्यारहवें कुलकर चन्द्राभ का भी उल्लेख नही है। शेष सात वे ही है।

---

१२ तीसे समाए पच्छिमेतिभाए पलिओवमट्ठ-
भागावसेसे, एत्थरण, इमे पण्णरस कुलगरा
समुप्पज्जित्था त जहा—सुमई, पडिस्सुई,
सीमकरे, सीमधरे, खेमकरे, खेमधरे,
विमलवाहणे, चक्खुम, जसम अभिचन्दे
चदाभे, पसेणई, मरुदेवे, णाभी उसभोत्ति।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति पत्र० १३२

१३. आदि पुराण ३।१५।
(ख) महापुराण ३।२२६। पृ० ६६।

१४ स्वायम्भुवस्यास्य मनो, षड्वश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्त प्रजा स्वा स्वा, महात्मानो महौजस ॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च, तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा, विवस्वत्सुत एव च ॥
स्वायम्भुवाद्या सप्तैते, मनवो भूरितेजस।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥

—मनुस्मृति, अ० १। श्लो० ६१–६२–६३

१५ (१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) ओत्तमि, (४) तापस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्षसावर्णि, (१०) ब्रह्मसावर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) रुद्रसावर्णि, (१३) रौच्य देव सावर्णि, (१४) इन्द्र सावर्णि।

—मोन्योर-मोन्योर विलियम सस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी पृ० ७८४

दण्डनीति

अपराधी मनोवृत्ति जब व्यवस्था का अतिक्रमण करने लगी तब अपराधों के निरोध के लिये कुलकरों ने सर्वप्रथम दण्डनीति[16] का प्रचलन किया। वह दण्डनीति हाकार माकार और धिक्कार थी।[17]

हाकार नीति

सात कुलकरों की दृष्टि से प्रथम कुलकर विमल वाहन के समय हाकार[18] नीति का प्रचलन हुआ। उस युग का मानव आज के मानव की तरह अमर्यादित व उच्छृंखल नहीं था। वह स्वभाव से ही संकोची और लज्जाशील था। अपराध करने पर अपराधी को इतना ही कहा जाता — हा! अर्थात् तुमने यह क्या किया? यह शब्द प्रताड़ना उस युग का महान् दण्ड था। अपराधी पानी-पानी हो जाता।[19] प्रस्तुत नीति द्वितीय कुलकर चक्षुष्मान् के समय तक सफलता के साथ चली।

माकार नीति

जब हाकार नीति विफल होने लगी तब माकार नीति का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।[20] तृतीय और चतुर्थ कुलकर यशस्वी और

---

१६ दण्ड अपराधिनामनुशासन तत्र तस्य वा स एव वा नीति नया दण्डनीति।

—स्थानांग वृत्ति प ३६९-१

१७ हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दण्डनीतीओ।
वोच्छ तासि विसेसं जहक्कम आणुपुव्वीए॥

—आव नि गा १६४

१८ ह इत्यधिक्षेपार्थस्तस्य करण हकार।

—स्थानाङ्ग सू० वृत्ति प ३९९

१९ तेणं मणुआ हक्कारेण दंडेण हया समाणा लज्जिआ विलज्जिआ वेड्डा भीआ तुसिणीआ विणओणया चिट्ठन्ति।

—जम्बू कालाधिकार पृ ७९

२० मा इत्यस्य निषेधार्थस्य करण अभिधान माकार।

—स्थानाङ्ग वृत्ति प ३९९

"अभिचन्द्र" के समय तक लघु अपराध के लिए "हाकार नीति" और गुरुतर अपराध के लिए "माकार नीति" प्रचलित रही। "मत करो" यह निषेधाज्ञा महान् दण्ड समझी जाने लगी।

धिक्कारनीति

मगर जन साधारण की धृष्ठता क्रमश बढती जा रही थी, अत माकारनीति के भी असफल हो जाने पर "धिक्कारनीति" का प्रादुर्भाव हुआ।[२१] और यह नीति पाँचवे प्रसेनजित्, छठे मरुदेव तथा सातवे कुलकर नाभि तक चलती रही। इस प्रकार खेद, निषेध और तिरस्कार मृत्युदण्ड से भी अधिक प्रभावशाली थे। क्योंकि उस समय का मानव स्वभाव से सरल और मानस से कोमल था।[२२] उस समय तक अपराधवृत्ति का विशेष विकास नही हुआ था।

स्वप्न-दर्शन

अन्तिम कुलकर नाभि के समय यौगलिक सभ्यता क्षीण होने लगी, और एक नयी सभ्यता मुस्कुराने लगी। उस सन्धिवेला मे श्री ऋषभदेव सर्वार्थविमान से च्यवकर माता मरुदेवी की कुक्षि मे आये। उनके पिता नाभि थे।[२३]

---

२१ विगधिक्षेपार्थं एव तस्य करण उच्चारण धिक्कार ।

—स्थानाग वृत्ति प० ३९९

२२ तेण मणुआ पगईउवसन्ता, पगई पयणुकोह-माण—माया—लोहा, मिउ—मद्दवसम्पण्णा, अल्लीणा, भद्दगा, विणीआ, अप्पिच्छा, असणिहिसचया, विडिमन्तरपरिवसणा जहिच्छिअ कामकामिणो ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार सू० १४

२३ नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए ।

—कल्पसूत्र पुण्य० सू० १९१ पृ० ५६

(ख) त्रिषष्ठि पर्व १, सग २, श्लो० ६४७ से ६५३ ।

(ग) नाभिस्त्वजनयत्पुत्र, मरुदेव्या महाद्युति ।
ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥

—वायुमहापुराण पूर्वार्ध ५ अ० ३३

जब बालक गर्भ मे आता है तब गर्भ का माता के मानस पर और माता के मानस का गर्भ पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि किसी विशिष्ठ पुरुष के गर्भ मे आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। भारतीय साहित्य मे स्वप्न विज्ञान के सम्बन्ध मे विस्तार से निरूपण मिलता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के गर्भ मे आने पर माता कौशल्या ने चार स्वप्न देखे थे।[२४] कर्मयोगी श्रीकृष्ण के गर्भ में आने पर देवकी ने सात स्वप्न देखे थे।[२५] महात्मा बुद्ध के

(घ) नाभिस्त्वजनयत् पुत्र मरुदेव्या महाद्युतिम् ॥५६॥
ऋषभ पार्थिव श्रेष्ठ सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर पुत्रशताग्रज ॥
— ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वार्द्ध अनुषङ्गपाद श्लो० ५६–६ अध्याय १४

(ङ) नाभिमरुदेव्या पुत्रमजनयत् ऋषभनामान ।
— वाराह पुराण अध्याय ७४

(च) नाभे पुत्रश्च ऋषभ ।
— स्कन्द पुराण मा०श्वरखण्ड-कौमारखण्ड
श्लो ५७ अध्याय ३७

(छ) हिमाह्वय तु यत्प नाभेरासीन्महात्मन ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्या महाद्युति ॥
— कूर्मपुराण श्लो ३७ अध्याय ४१

२४ (क) चतुरो बलदेवाम्बाय ।
— श्री काललोकप्रकाश सर्ग ३ श्लोक ५६ पृ १६६

(ख) ददर्श सुखसुप्ता च यामिन्या पश्चिम क्षणे ।
चतुर सा महास्वप्नान् सूचकान् बलजन्मन ॥
— त्रिषष्टि पर्व ४। सर्ग १ श्लो १६८

(ग) सेनप्रश्न पृ ३७६।

(घ) जैन रामायण मेघराज जी १६ वा ढाल व दोह।

२५ यामिन्या पश्चिमे यामे सूचका विष्णुजन्मन ।
देव्या ददृशिरे स्वप्ना सप्तैते सुखसुप्तया ॥
— त्रिषष्टि ४।१।२१७

(ख) सेनप्रश्न पृ ३७६।

जब बालक गर्भ में आता है तब गर्भ का माता के मानस पर, और माता के मानस का गर्भ पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि किसी विशिष्ट पुरुष के गर्भ में आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। भारतीय साहित्य में स्वप्न विज्ञान के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण मिलता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के गर्भ में आने पर माता कौशल्या ने चार स्वप्न देखे थे।[२४] कर्मयोगी श्रीकृष्ण के गर्भ में आने पर देवकी ने सात स्वप्न देखे थे।[२५] महात्मा बुद्ध के

(घ) नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मरुदेव्या महाद्युतिम् ॥५९॥
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥
—ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वार्द्ध अनुषङ्गपाद श्लो ५९-६ अध्याय १४

(ङ) नाभिर्मरुदेव्यां पुत्रमजनयत् ऋषभनामानं।
—वाराह पुराण अध्याय ७४

(च) नाभेः पुत्रश्च ऋषभः।
—स्कन्द पुराण माहेश्वरखण्ड-कौमारखण्ड श्लो ५७ अध्याय ३७

(छ) हिमाह्वयं तु यद्वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः॥
—कूर्मपुराण श्लो ३७ अध्याय ४१

२४ (क) चतुरो बलदेवाम्बा ।
—श्री काललोकप्रकाश सर्ग ३ श्लोक ५६ पृ १६६

(ख) यदा सुखसुप्ता च यामिन्याः पश्चिमे क्षणे।
चतुरः सा महास्वप्नान् सूचनान् बलजन्मनः॥
—त्रिषष्ठि० पर्व ४। सर्ग १ श्लो १६८

(ग) सेनप्रश्न पृ ३७६।

(घ) जैन रामायण केशराज जी १६ वीं ढाल के दोहे।

२५ यामिन्याः पश्चिमे यामे सूचका विष्णुजन्मनः।
देव्या ददृशिरे स्वप्नाः सप्तैते सुखसुप्तया॥
—त्रिषष्ठि ४।१।२१७

(ख) सेनप्रश्न पृ ३७६।

गर्भ मे आने पर उनकी माता मायादेवी ने एक षड्दन्त गज का स्वप्न देखा था।[२६] उसी प्रकार श्री ऋषभदेव के गर्भ मे आने पर माता मरुदेवी ने भी (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) पुष्प-माला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य (८) ध्वजा, (६) कुम्भ, (१०) पद्मसरोवर, (११) क्षीर-समुद्र, (१२) विमान, (१३) रत्नराशि, (१४) निर्धूम अग्नि ये चौदह महास्वप्न देखे।[२७] दिगम्बराचार्य जिनसेन ने सोलह स्वप्न देखने का उल्लेख किया है।[२८] उपर्युक्त चौदह स्वप्नो मे से ध्वजा को

---

२६ (क) बुद्धचर्या, राहुल साकृत्यायन पृ० २, प्रथम सस्क०

(ख) ललित विस्तर, गर्भावक्रान्ति परिवर्तन।

२७ गय वसह सीह अभिसेय, दाम ससि दिणयर झय
पउमसर सागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिंहि
—कल्पसूत्र ५०

२८ सापश्यत् षोडशस्वप्नान्, इमान् शुभफलोदयान्।
निशाया पश्चिमे यामे, जिनजन्मानुशंसिन ॥१०३
गजेन्द्रमैन्द्रमामन्द्र बृंहित त्रिमदस्नुतम्।
ध्वनन्तमिवसासार, सा ददर्श शरद्घनम् ॥१०४
गवेन्द्र दुन्दुभिस्कन्ध, कुमुदापाण्डुरद्युतिम्।
पीयूषराशिनीकाश, सापश्यत् मन्द्रनि स्वनम् ॥१०५
मृगेन्द्रमिन्दुसच्छायवपुष रक्तकन्धरम्।
ज्योत्स्नया सन्ध्यया चैव, घटिताङ्गमिवैक्षत ॥१०६
पद्मा पद्ममयोत्तुङ्गविष्टरे सुरवारणैः।
स्नाप्या हिरण्मयै कुम्भै अदर्शत् स्वामिव श्रियम् ॥१०७
दामनी कुसुमामोद, समालग्नमदालिनी।
तज्झङ्कृतैरिवारब्धगाने सानन्दमैक्षत ॥१०८
समग्रबिम्बमुज्ज्योत्स्न, ताराधीश सतारकम्।
स्मेर स्वमिव वक्त्राब्ज, समौक्तिकमलोकयत् ॥१०६
विधूतध्वान्तमुद्यन्त, भास्वन्तमुदयाचलात्।
शातकुम्भमय कुम्भ मिवाद्राक्षीत् स्वमङ्गले ॥११०
कुम्भौ हिरण्मयौ पद्मपिहितास्यौ व्यलोकत।
स्तनकुम्भाविवात्मीयौ, समासक्तकराम्बुजौ ॥१११

उन्होने स्थान नहीं दिया है। शेष तेरह स्वप्न वे ही हैं। उनके अतिरिक्त (१) मत्स्ययुगल (२) सिंहासन (३) नागेन्द्र का भवन—ये तीन स्वप्न अधिक है। श्वेताम्बरमान्यतानुसार नरक से आने वाले तीर्थङ्करो की माता स्वप्न मे भवन देखती है और स्वर्ग से आने वालों की माता विमान।[२९] उन्होने विमान और भवन के स्वप्न को वैकल्पिक माना है।

झषौ सरसि सम्फुल्लकुमुदोत्पलपङ्कजे।
सापश्यन्नयनायाम दर्शयन्ताविवात्मन ॥११२॥
तरत्सरोजकिञ्जल्कपिञ्जरीकृतमैक्षत ।
सुवर्णद्रवसम्पूर्णमिव दिव्य सरोवरम् ॥११३॥
क्षुभ्यन्तमब्धिमुद्वेल चलत्कल्लोलकाहलम्।
सादर्शच्छीकरमोक्तुम् अट्टहासमिवोद्यतम् ॥११४॥
सिंहासनमुत्तुङ्ग स्फुरन्मणिहिरण्मयम्।
सापश्यन्मेरुशृङ्गस्य वदधो दधदूर्जिताम् ॥११५॥
नाकालय व्यलोकिष्ट परार्ध्यमणिभासुरम्।
स्वसूनो प्रसवागार मिव देवरुपाहृतम् ॥११६॥
फणीन्द्रभवन भूमिम्, उद्भिद्योद्गतमैक्षत ।
प्राग्दृष्टस्वर्विमानेन स्पर्द्धां कर्तुमिवोद्यतम् ॥११७॥
रत्नाना राशिमुत्सर्पद्बहुपल्लविताम्बरम् ।
सा निदध्यौ धरादेव्या निधानमिव दर्शितम् ॥११८॥
ज्वलद्भासुरनिर्धूममवपुष विधमार्चिषम्।
प्रतापमिव पुत्रस्य मूर्तिरूप व्यचायत ॥११९॥
त्वरामयञ्च तुङ्गाङ्ग पुङ्गव रुक्मसच्छविम्।
प्रविशन्त स्ववक्त्राब्ज स्वप्नान्ते पीनकन्धरम् ॥१२०॥

—महापुराण जिनसेनाचार्य प १२ श्लो १०३ से १२०
पृ २५९–२६

२९ देवलोकाद्योऽवतरति तन्माता विमान पश्यति यस्तु नरकात तन्माता भवनमिति।

—भगवती शतक ११ उद्द ११ अभयदेववृत्ति

जन्म

भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, प्रभृति श्वेताम्बरग्रन्थानुसार चैत्र कृष्णा अष्टमी को हुआ[30] और दिगम्बराचार्य जिनसेन के अनुसार नवमी[31] को। सभव है अष्टमी की मध्यरात्रि होने से श्वेताम्बर परम्परा ने अष्टमी लिखा हो और प्रात काल जन्म मानने से दिगम्बर परम्परा ने नवमी लिखा हो। इस

---

३० उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं पयाया।

—कल्पसूत्र, पुण्य० सू० १९३ पृ०

(ख) चित्तबहुलट्ठमीए जाओ उसभो असाढनक्खत्ते।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १८८

(ग) चेत्तबहुलट्ठमीए उत्तरासाढाणक्खत्तेण जाव आरोग्गा आरोग्गं पयाता।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदासमहत्तर पृ० १३५

(घ) त्रिषष्टि० सर्ग २, पर्व १ श्लो० पृ० २६४।

(ङ) कल्पलता—समय सुन्दर पृ० १९७।

(च) कल्पद्रुम कलिका—लक्ष्मीवल्लभ पृ० १४२।

(छ) कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी, केसरगणी पृ० १४८।

(ज) कल्पसूत्र, कल्पसुबोधिका, पृ० ४८५।

३१ अथातो नवमासानाम्, अत्यये सुषुवे विभुम्।
देवी देवीभिरुक्ताभि, र्यथास्वं परिचारिता॥
प्राचीव बन्धुमब्जानां, सा लेभे भास्वरं सुतम्।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे, नवम्यामुदये रवे॥
विश्वे ब्रह्ममहायोगे, जगतामेकवल्लभम्।
भासमानं त्रिभिर्बोधैः शिशुमप्यशिशुं गुणैः॥

—महापुराण जिनसेन स० १३, श्लो० १–३ पृ० २८३

भेद का प्रमुख कारण हमारी दृष्टि से उदय और अस्त तिथि की पृथक्-पृथक मान्यता हो सकती है।

नाम

मा मरुदेवी ने जो चौदह महास्वप्न देखे थे। उनमे सब प्रथम वृषभ का स्वप्न था[32] और जन्म के पश्चात् भी शिशु के उरुस्थल पर वृषभ का लाछन था अत उनका नाम ऋषभ रखा गया।[33] भागवत्

---

३२ (क) सा उसहगयसीहमाईए चोद्दस सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा।
—आवश्यक नि० मल वृत्ति प० १६३।१

(ख) णवर पढम उसभ मुहे अतित पासति सेसाउ गय।
—कल्पसूत्र पुण्य सू १६२ प ५६

(ग) स्वर्गावतरणे दृष्ट स्वप्नेऽस्य वृषभो यत।
जनन्या तस्य देव आहूतो वृषभाख्यया॥
—महापुराण जिनसेन चतुर्दश पर्व श्लो० १६२

(घ) त्रिषष्टि १।२।२१३। प ४।१ पृ ३१६

३३ (क) तत्र भगवतो नाम निबन्धन चतुर्विंशतिस्तव वक्ष्यति
ऊरुसुउसभलक्षणमुसभ सुमिणमि तेण उसभजिणो।
—आवश्यक मल वृ पृ १६२।१

(ख) ऊरुसु उसभलछण उसभो सुमिणमि तेण कारणेण उसभोत्ति णाम कय। —आवश्यक चूर्णि जिनदास पृ १५१

(ग) ऊरुप्रदेशे ऋषभो लाञ्छन यज्जगत्पते।
ऋषभ प्रथम य च स्वप्ने माता निरीक्षित॥
तदृषभस्य ऋषभ इति नामोत्सवपुर. सरम्।
तौ मातापितरौ हृष्टो विदधाते शुभे दिने॥
—त्रिषष्ठि १।२।६४८–६४६। प ५४

(घ) पूर्व स्वप्नसमये वृषभस्य दर्शनात् पुत्रस्योभयोर्जङ्घयो रोम्णाम् आवर्तभ्रमणावलोकाद् वृषभस्याकारस्यलक्षणाद् नाभिकुलकरेण ऋषभ इतिनाम दत्तम्।
—कल्पसूत्र व्या ७ पृ १४२ कल्पद्रु मकलिका

(ङ) कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी पृ १४४।

'प्रजापति' भी लिखा है। उनके अतिरिक्त उनके हाश्यप,[46] विधाता, विश्वकर्मा और स्रष्टा[47] आदि अनेक नाम भी प्रसिद्ध है।

आदिपुरुष

भगवान श्री ऋषभदेव जैनसंस्कृति की दृष्टि से प्रथम तीर्थङ्कर हैं। श्रीमद्भागवत की दृष्टि से वे विष्णु के अवतार हैं। भगवान श्री विष्णु महाराजा नाभि का प्रिय करने के लिए उनके अन्तःपुर की महारानी मरुदेवी के गर्भ में आये। उन्होंने इस पवित्र शरीर का अवतार वातरशना श्रमण ऋषियों के धर्मों को प्रकट करने की इच्छा से ग्रहण किया।[48]

शिव महापुराण के अनुसार भगवान श्री ऋषभदेव शिव के अट्ठाईस योगावतारों में आठवें योगावतार हैं।[49] उन्होंने ऋषभदेव के

---

४६ काम—उच्छ्व, तस्य विरागे -राग्य- रम, ना जगत ताग गा कामवा —उग्रभ रामा।

— स्थवैरावलि - अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ग) काश्यपमित्युच्यते तेज काश्यपस्तस्य पालनात्।

— महापुराण प० १६, श्लो० २६६ पृ० ३७०

४७ विधाता विश्वकर्मा च, स्रष्टा चत्यादिनामभि।
प्रजास्त्व व्याहरन्ति स्म, जगता पतिमच्युतम्॥

—महापुराण, आचार्य जिनसेन १६।२६७।३७०

४८ प्रमादितो नाभ प्रियचिकीर्षया,
तदवरोधायने मरुदेव्या धर्मान् दर्शयितुकामा,
वातरशनाना श्रमणाना ऋषीणाम
ऊर्ध्वमन्थिना शुक्लया तन्वावततार॥

—श्री मद्भागवत पञ्चम स्कन्ध

४९ शिव पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस
उत्तरखण्ड अ० ९, श्लो० ३, पृ० १२७६

में यही नाम आया है। उनके नाम के साथ नाथ और देव शब्द कब जुडे यह कहना कठिन है तथापि यह स्पष्ट है कि ये शब्द उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा के सूचक है।

दिगम्बरपरम्परा म ऋषभदेव के स्थान पर वृषभदेव भी प्रसिद्ध है। वृषभदेव जगत् भर मे ज्येष्ठ है और जगत् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेगे एतदर्थ ही इन्द्र ने उनका नाम वृषभदेव रखा।[४२] वृष कहते है श्रेष्ठ को। भगवान् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान है इसलिए भी इन्द्र ने उन्हें वृषभ स्वामी के नाम से पुकारा।[४३]

श्री ऋषभदेव धर्म और कर्म के आद्यनिर्माता थे एतदर्थ जैन इतिहासकारो ने उनका एक नाम आदिनाथ भी लिखा है और यह नाम अधिक जन मन प्रिय भी रहा है।

श्री ऋषभदेव प्रजा के पालक थे एतदर्थ आचार्य जिनसेन [४४] व आचार्य समन्तभद्र ने उनका एक गुण निष्पन्न नाम

---

४२ वृषभोऽयं जगज्ज्येष्ठो वर्षिष्यति जगद्धितम् ।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तम अवापुर्वृषभाह्वयम् ॥
—महापुराण जिनसेन पर्व १४ श्लो १६ प ३१६

४३ वृषो हि भगवान्धर्म तेन यद्भाति तीर्थकृत् ।
ततोऽयं वृषभस्वामीत्याह्वास्तैनं पुरन्दर ॥
—महापुराण जिनसेन पर्व १४ श्लो १६१ प ३१६

४४ आषाढमासबहुलप्रतिपद्दिवसे कृती ।
कृत्वा कृतयुगारम्भं प्राजापत्यमुपेयिवान् ॥
—महापुराण १६ ।१६।३६३

४५ प्रजापतिर्य प्रथम जिजीविषु
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा ।
प्रबुद्धतत्त्व पुनरद्भुतोदयो
ममत्वतो निर्विविदे विदाम्वर ॥
—बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र

रूप मे अवतार ग्रहण किया। प्रभास पुराण मे भी ऐसा ही उल्लेख है।[१]

डाक्टर राजकुमार जन ने वृषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राय मान्यताए ...ीपक लख म वद उपनिषद् भागवत प्रभृति ग्रन्थों के शताधिक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऋषभदेव और शिव एक ही है पृथक्-पृथक नही। श्रमण और ब्राह्मण दोनो परम्पराओ के वे आदि पुरुष है।

वश-उत्पत्ति

जब ऋषभदेव एक वर्ष स कुछ कम के थ उस समय वे पिता की गोद मे बठ हुए क्रीडा कर रहे थे। शक्रेन्द्र हाथ मे इक्षु लेकर आया।[५३] ऋषभदेव ने उसे लने के लिए हाथ आग बढाया। बालक का इक्षु के प्रति आकर्षण देखकर शक्र ने इस वश को 'इक्ष्वाकु वश' नाम से

---

५ इत्थप्रभाव ऋषभोऽवतार ...वरस्य म।
सता गतिर्दीनबन्धुर्नवम कथितस्तव ॥
ऋषभस्य चरित्र हि परम पावन महत्।
स्वर्ग्य यशस्यमायुष्य श्रोतव्य च प्रयत्नत ॥

—शिवपुराण ४।४७-४८

५१ कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽय जिनेश्वर।
चकार स्वावतार च सर्वज्ञ सर्वग शिव ॥

—प्रभासपुराण ४९

५२ मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ पृ ६ ९।

५३ (क) देसूणग च वरिस सक्कागमण च वसठवणा य।

—आवश्यक नि गा १८५ मल व पृ १९२

(ख) ...तो य णाभिकुलकरा उसभसामिणा अकवरगतेण एव च विहरन्ति सक्को य महप्पमाणाओ इक्खुलट्ठीओ गहाय उवगतो वयावई।

—आवश्यक चूर्णि पृ १५२

अभिहित किया। आचार्यों ने व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—इक्षु+आकु (भक्षणार्थे) इक्ष्वाकु।"[५४]

विवाह परम्परा

सामाजिक रीतिरिवाज, जिसमें विवाहप्रथा भी सम्मिलित है, कोई शाश्वत सिद्धान्त नहीं, किन्तु उन मे युग के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। भाई-बहिन का विवाह इस युग मे बडे से बडा पाप माना जाता है, किन्तु उस युग मे यह एक सामान्य प्रथा थी। यौगलिक परम्परा मे भाई और भगिनी ही पति और पत्नी के रूप मे परिवर्तित हो जाया करते थे। सुनन्दा के भ्राता की अकाल मे मृत्यु हो जाने से[५५]

---

५४ (क) सक्को वसट्ठवणे इक्खु अगू तेण हुन्ति इक्खागा।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १८६।

(ख) भगवता लट्ठीमु दिट्ठी पाडिता, ताहे सक्केण भणिय—कि भगव! इक्खुअकु। अकु भक्खणे, ताहे सामिणा पसत्था लक्खणधरो अलंकितविभूसिता दाहिणहत्था पसारित्ता, अतीव तम्मि हरिसा जातो भगवन्तस्स, तएण सक्कस्स देविदस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिते—जम्हा ण तित्थगरे इक्खु अभिलसति तम्हा इक्खागुवसो भवतु, एव सक्को वस ठवेऊण गतो, अन्नऽवि त काल खत्तिया इक्खु भुन्जन्ति तेण इक्खागवसा जाता इति उवरि आहारदारे निवतमि "आसी य इक्खुभोती इक्खागा तेण खत्तिया होति" भणिही।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० १५२

(ग) त्रिषष्ठि शलाका० १।२।६५४ स ६५६।

(घ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पृ० ४८७।

(ङ) कल्पसूत्र, कल्पलता, समयसुन्दर जी, पृ० १६८।

(च) „ कल्पार्थबोधिनीवृत्ति० केसर० पृ० १४४।

(छ) „ कल्पद्रुमकलिका पृ० १४३।

(ज) „ मणिसागर पृ० २६६

५५ पढमो अकालमच्चू तहि, तालफलेण दारओ उ हतो।
कन्ना य कुलगरेहिं य, सिट्ठे गहिया उसभपत्ती॥
—आव० नि० गा० १६०, म० वृ० १६३

ऋषभदेव ने सुनन्दा व सहजात सुमङ्गला के साथ पाणिग्रहण कर नई व्यवस्था का सूत्रपात किया।[५६] सुमङ्गला ने भरत और ब्राह्मी को और सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया। इसके पश्चात् सुमंगला के क्रमश अट्ठानवे पुत्र और हुए। दिगम्बर परम्परा निन्यानवे पुत्र मानती है।

---

५६ (क) भोगसमत्थ नाउ वरकम्म तस्स कासि देविन्दो।
दोण्ह वरमहिलाण वहूकम्म कासि देवीता॥
—आव नि गा १९१ प १९६
(ख) त्रिषष्टि १।२।८८१।

५७ देवी सुमङ्गलाए भरहो बम्भी य मिहुणग जाय।
देवीए सुनन्दाए बाहुबली सुन्दरी चेव॥
—आवश्यक मूलभाष्य
(ख) छप्पु व्वसयसहस्सा पुव्वि जायस्स जिणवरिंदस्स।
ता भरहबम्भि सुन्दरि बाहुबली चेव जायाइ॥
—आव नि गा १९२ म वृ १९४।१
(ग) आवश्यक चूर्णि पृ १५३।
(घ) सुनन्दा सुन्दरी पुत्री पुत्र बाहुबलीशिनम्।
लब्ध्वा रुचि परा भेजे प्राचीवार्कं सह त्विषा॥
—महा १६।८। ४६
(ड) तदा बाहुपीठो भरत पीठजीवो ब्राह्मी इति सुमङ्गलाया मिथुनक जात। एव सुबाहुजीवो बाहुबली महापीठजीव सुन्दरी इति मिथुनक सुनन्दाया जात।
—कल्पलता–समय सुन्दर
(च) कल्प कल्पार्थबोधिनी पृ १४४–१४५।
(छ) कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी पृ १४३।

५८ अउणापन्न जुयले
पुत्ताण सुमङ्गला पुणो पसवे।
—आव नि गा १९३ मल वृ १९४।१
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ १५३।
(ग) एव पुनरपि सुमङ्गलाया एकोनपञ्चाशत् युगलानि पुत्ररूपाणि जातानि।
—कल्पलता–समयसुन्दर

५९ इत्यकाण्डेऽस्य पुत्रा बभूवुर्वृषभेशिन।
भरतस्यानुजन्मानश्चरमाङ्गा महौजस॥

विधवा विवाह नहीं

कितने ही आधुनिक विचारक कल्पना के गगन में विहरण करते हुए 'सुनन्दा' को विधवा मानकर श्री ऋषभदेव के उसके साथ किए गए विवाह को विधवा विवाह कहते हैं। उन विचारकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि आचार्य भद्रबाहु,[६०] आचार्य जिनदासगणि महत्तर,[६१] आचार्य मलयगिरि,[६२] आचार्य हेमचन्द्र,[६३] श्री समय

ततो ब्राह्मी यशस्वत्या, ब्रह्मा समुदपादयत् ।
कलामिवापरागाया, ज्योत्स्नपक्षोऽमला विधो ॥

—महापुराण जिन० १६।४–५ पृ० ३४६

६० आवश्यक निर्युक्ति, आचार्य भद्रबाहु गा० १९० ।

६१ ततो य तलरुक्खाओ तलफलं पक्कं समाणं वातेण आहतं तस्स दारगस्स उवरि पडितं तेण सो अकाले चेव जीविताता ववरोवितो ।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास महत्तर पृ० १५२

६२ भगवतो देशोनवर्षकाले एव किञ्चिन्मिथुनकं सञ्जातापत्यं सत् तदपत्यमिथुनकं तालवृक्षस्याधो विमुच्य रिरसया कदलीगृहादि क्रीडा गृहमगमत्, तस्माच्च तालवृक्षात् पवनप्रेरितं पक्वं तालफलमपतत्, तेन दारकाऽकाल एव जीविताद् व्यपरोपितः ।

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० १९३

६३ अन्येद्युः क्रीडया क्रीडद् बालभावानुरूपया ।
मिथो मिथुनकं किञ्चित्, तले तालतरोरगात् ॥
तदैव दैवदुर्योगात्, तन्मध्यान्नरमूर्द्धनि ।
तडिद्दण्ड इवैरण्डेऽपतत् तालफलं महत् ॥
प्रहृतः काकतालीयन्यायेन स तु मूर्द्धनि ।
विपन्नो दारकस्तत्र, प्रथमेनाऽपमृत्युना ॥

—त्रिषष्टि १।२।७३५ से ७३७

सुन्दर [६४] उपाध्याय विनय विजय [६५] केशरमुनि [६६] श्री लक्ष्मीवल्लभ [६७] श्री मणिसागर [६८] प्रभृति विज्ञोने प्रस्तुत घटना का उट्टङ्कन करते हुए उस युगल को बालक और बालिका बताया है न कि युवा-युवती। और जब वे बालक थे तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी भ्रातृ भगिनी रूप में ही था पति-पत्नी के रूप में नहीं अतः स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव ने सुनन्दा के साथ विवाह किया वह विधवा विवाह नहीं था। जब उनका पति-पत्नीरूप सम्बन्ध ही नहीं हुआ तो वह विधवा कैसे कही जा सकती है ?

आचार्य जिनसेन ने महापुराण में प्रस्तुत घटना का उल्लेख नहीं किया है और न ऋषभसहजात सुमंगला में ही पाणिग्रहण करवाया है। श्री ऋषभ की अनुमति लेकर नाभि ने ऋषभ के विवाह हेतु दो सुयोग्य सुशील कन्याओं की याचना की।[६९] फलस्वरूप कच्छ महाकच्छ की दो बहिन जो सुन्दर और यौवनवती थी जिनका नाम यशस्वी और सुनन्दा था उनके साथ नाभि ने ऋषभ का विवाह किया। भागवत के अनुसार गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए देवराज इन्द्र की दी हुई उनकी कन्या जयन्ती से ऋषभदेव ने विवाह

---

६४ कल्पसूत्र कल्पलता व्या० समयसुन्दर प० १६८।

६५ कल्पसुबोधिका विनय प० ४८७ सारा० न०।

६६ कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी प० १४४।

६७ कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी प० १४२।

६८ कल्पसूत्र पृ० २१७।

६९ सुरेन्द्रानुमतात्कन्ये सुशीले चारुलक्षणे।
सनाभिः सुरुचिराकारे वरयामास नाभिराट् ॥
—महा० पर्व० १५ श्लो० ६६ पृ० ३३

७० तन्व्यौ कच्छमहाकच्छजाम्यौ सौम्ये पतिंवरे।
यशस्वतीसुनन्दाख्ये स एव पर्यणीनयत् ॥
—महा० १५।७० । प० ३३१

किया।[७१] संभव है सुनन्दा का ही भागवतकार ने जयन्ती नाम दिया हो। क्योंकि श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार वह अरण्य में एकाकी प्राप्त हुई थी। उसकी सौन्दर्य-सुषमा अत्यधिक होने के कारण वह वनदेवी के सदृश प्रतीत हो रही थी।[७२] उसके सौन्दर्य तथा सद्गुणों के कारण ही भागवतकार ने उसे इन्द्र की पुत्री समझा है। और पुत्री समझकर वर्णन किया है। श्वेताम्बर ग्रन्थों की तरह[७३] भागवतकार ने भी उसके सौ सन्तान बताई है।[७४]

भरत और बाहुबली का विवाह

श्री ऋषभदेव ने यौगलिक धर्म को मिटाने के लिये जब भरत और बाहुबली युवा हुए तब भरतसहजात ब्राह्मी का पाणिग्रहण बाहुबली से करवाया और बाहुबली सहजात सुन्दरी का पाणिग्रहण भरत से करवाया।[७५] इन विवाहों का अनुकरण करके

---

७१ गृहमेधिना धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभय लक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास।

—भागवत ५।४।८।५५७

७२ सा य अतीव उक्किट्ठसरीरा देवकण्णाविव तेसु ए वणंतरेसु जह वण-देवता तहा विहरति, त च एक्कलिय दट्ठुं केति पुरिसा साहन्ति, ताहे नाभी त दारिय गहाय भणति—उसभस्स भारिया भविस्सति त्ति।

—आवश्यकचूर्णि जिनदास पृ० १५२– ५३

७३ तए ण सुमङ्गलाए बाहू य पीढो य अणुत्तरेहितो चइऊण मिहुणय जाता, ततेण सा सुमङ्गलादेवी अन्नाणि एगूणपन्न पुत्तजुयल-गाणि पसवति।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास १५३

७४ भागवत ५।४।८।५५७।

७५ युग्मिधर्मनिषेधाय भरताय ददौ प्रभु।
सोदर्यां बाहुबलिन सुन्दरी गुणसुन्दरीम्॥
भरतस्य च सोदर्या ददौ ब्राह्मी जगत्प्रभु।
भूपाय बाहुबलिने तदादि जनताप्यथ॥

—श्री काललोक प्रकाश सर्ग० ३२, श्लो० ४७–४८

जनता ने भी भिन्न गोत्र म समुत्पन्न कन्याओं को उनके माता पिता आदि अभिभावको द्वारा दान म प्राप्त कर पाणिग्रहण करना शुरू किया। इस प्रकार एक नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई।

आचार्य जिनसेन ने ब्राह्मी सुन्दरी के विवाह का वर्णन नही किया है। प्रज्ञाचक्षु प० सुखलाल जी भी उन्हे अविवाहित मानते है+ पर उन्होने प्राचीन श्वेताम्बर ग्रन्थो के कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नही किये।

ऋषभदेव का काल भारी उथलपुथल का काल था। उस समय प्राकृतिक परिवर्तनो के साथ मानवीय व्यवस्था म भी आमूल परिवर्तन हो रहा था। परिस्थितियाँ पलट रही थी। परिवार प्रथा

(ख) ता व दाणमुसभ दित
दण्ठ जणमवि पवत्त।

—आव निर्यु गा १९४

(ग) भगवता युगलधर्मव्यवच्छेदाय भरतेन सह जाता ब्राह्मी बाहुबलिने दत्ता बाहुबलिना सहजाता सुदरी भरताय।

—आव मल वृत्ति पृ २

(घ) भरतस्य साथ प्रसूता ब्राह्मी सा बाहुबलाय परिणायिता बाहुबलसार्धं जाता सुन्दरी सा भरतस्यार्पिता। भरतेन स्त्रीरत्नार्थं रक्षिता एव युगलधर्मो निवारित श्री ऋषभदेवेन।

—कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी पृ १४४।१

७६ (क) भिन्नगोत्रादिका कन्या दत्ता पित्रादिभिर्मुदा।
विधिनोपायत प्राय प्रावर्तत तथा तत ॥

—श्री कालालोक प्रकाश स ३२ श्लो ४६

(ख) इति दृष्ट्वा तत आरभ्य प्रायो लोकेऽपि कन्या पित्रादिना दत्ता सती परिणीयते इति प्रवृत्तम्।

—आव मू मल वृत्ति प १

\+ दर्शन और चिन्तन भा १ भगवान् ऋषभदेव अने तेमना परिवार प २३६

जन प्रकाश ८ फरवरी १९६६ जन परम्परा के आदर्श

का प्रारम्भ हो रहा था और सग्रह वृत्ति का सूत्रपात हो चला था। ऐसी स्थिति में अपराधवृत्ति का विकास होना भी स्वाभाविक था और वह हो रहा था।

सर्वप्रथम राजा

पूर्व में यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव के पिता 'नाभि' अन्तिम कुलकर थे। जब उनके नेतृत्व मे ही धिक्कारनीति का उल्लघन होने लगा, प्राचीन मर्यादाएँ विच्छिन्न होने लगी, तब उस अव्यवस्था मे योगलिक घबराकर श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे और उन्हे सारी स्थिति का परिज्ञान कराया।[७७] ऋषभदेव ने कहा—"जो मर्यादाओ का अतिक्रमण कर रहे है उन्हे दण्ड मिलना चाहिए और यह व्यवस्था राजा ही कर सकता है, क्योकि शक्ति के सारे स्रोत उसमे केन्द्रित होते है।" समय को परखने वाले नाभि ने यौगलिको की विनम्र प्रार्थना पर ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर "राजा" घोषित किया।[७८] ऋषभदेव राजा बने और शेष जनता प्रजा। इस प्रकार पूर्व चली आ रही "कुलकर" व्यवस्था का अन्त हुआ और एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

राज्याभिषेक के समय युगलसमूह कमलपत्रो मे पानी लाकर ऋषभदेव के पद-पद्मो का सिंचन करने लगे। उनके विनीत स्वभाव

---

७७ नीतीण अइक्कमणे निवेयणं उसभसामिस्स

—आव० नि० गा० १६३ म० वृ० प० १९४

(ख) आवश्यक चूर्णि—पृ० १५३

७८ राया करेइ दंडं सिट्ठे ते बेंति अम्हवि स होउ।
मग्गह य कुलगरं, सो य बेइ उसभो य भे राया॥

—आव० नि० गा० १९४ म० वृ० १९४

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १५३-१५४

(ग) विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा।
नाभिरात्मज समयसेतु रक्षायामभिषिच्य॥

—श्री मद्भागवत ५।४।५ पृ० ५५६

को लक्ष्य म रखकर नगरी का नाम विनीता रखा[79] उसका अपर नाम अयोध्या भी है।[80]

उस प्रान्त का नाम विनीत भूमि[81] और इक्खाग भूमि[82] पड़ा। कुछ समय के पश्चात् प्रस्तुत प्रान्त मध्यदेश के नाम से प्रख्यात हुआ।[83]

राज्य-व्यवस्था का सूत्रपात

इसी प्रकार श्री ऋषभदेव ने मानव जाति को विनाश के गर्त से बचाने के लिए और राज्य की सुव्यवस्था हेतु आरक्षक दल की स्थापना की जिसके अधिकारी उग्र कहलाये। मन्त्रिमण्डल बनाया जिसके अधिकारी भोग नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट के समीपस्थ जन जो परामर्श प्रदाता थे वे राजन्य के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी क्षत्रिय नाम से पहचाने गये।[84]

---

७६ भिसिणापत्ताहियरे उदयं घेत्तुं छुहन्ति पाएसु।
साहु विणीया पुरिसा विणीयनयरी अह निविट्ठा॥
—आव नि गा १९६ म वृ १९५।१

(ख) आवश्यक चूर्णि प १५४।

८० मध्येऽधभरतस्यासु यज्ञे बभवण पुरम्।
साकेत नामत ख्यात विनीतजनतावृतम्॥
—पुराणसार १८।३।३६

८१ आवश्यक सूत्र मल वृत्ति प १५७-२।

८२ (क) आवश्यक सूत्र म वृत्ति प १६३।
(ख) आव नि हारिभद्रीय टीका प १२ -२।

८३ आवश्यक निर्युक्ति हारि टी० गा १५१ प १ ६-२।

८४ (क) उग्गा भोगा रायण्ण खत्तिया सगहो भव चउहा।
आरक्खगुरुवयंसा सेसा जे खत्तिया ते उ॥
—आव नि गा १९८ म वृ प० १९५।१

(ख) एव तस्स अभिसित्तस्स चउव्विहो रायसंगहो भवति त जहा—
उग्गा भोगा राइण्णा खत्तिया। उग्गा ज आरक्खियपुरिसा

मलय गिरी के अभितानुसार बन्ध (बेडी का प्रयोग) और घात (डण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे।[९०] और मृत्यु दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ।[९१] जिनसेनाचार्य के अनुसार वधबन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय चले।[९२]

खाद्यसमस्या का समाधान

कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल ये ऋषभदेव के पूर्ववर्त्ती मानवों का आहार था।[९३] किन्तु जनसख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द मूल

(ख) परिहासणा उ पटमा, मडलिबधो उ होइ बीया उ।
चारगछविछेयाई भरहस्स चउव्विहा नीती॥
—आवश्यक भाष्य गा० ३

९० निगडाइजमो बन्धो, घातो दडादितालणया।
—आवश्यक निर्युक्ति० गा० २१७

(ख) बन्धा निगडादिभिर्यम — मयमन, घातो दण्डादिभिस्ताडना, एतेऽपि अर्थशास्त्रबन्धघातास्तत्काले यथायोग प्रवृत्ता।
—आव० नि० मल० वृत्ति प० १६६–२

९१ मारणया जीववहो जन्ना नागाइयाण पूयातो।
—आव० नि० गा०

(ख) मारण जीववधो-जीवस्य जीविताद् व्यपरोपण १९३ भरतेश्वरकाले समुत्पन्न। नक्खण
—आव० नि० म० वृत्ति।

९२ शरीरदण्डनञ्चैव वधबन्धादिलक्षणम्। ° पृ० १५६
नृणा प्रबलदोपाणा भरतेन नियोजितम्॥
—महापुराण—तृतीय पर्व०

९३ आसी मूलाहारा य पत्तहा ... खका॥
पुप्फा जइया किर कुलगरे ... स्यनेकश।

(ख) ... य गा० ५ ... नामजिज्ञपत्॥
—त्रिपष्टि १।२।६६० से ६६२

(ग) जिनदास

नीति का प्रचलन किया।[८६] चार प्रकार की दण्ड-व्यवस्था निर्मित की। (१) परिभाष, (२) मण्डलबन्ध (३) चारक (४) छविच्छेद।[८७]

परिभाष

कुछ समय के लिए अपराधी व्यक्ति को आक्रोशपूर्ण शब्दों में नजरबन्द रहने आदि का दण्ड देना।

मण्डलबन्ध

सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड देना।

चारक

बन्दीगृह में बन्द करने का दण्ड देना।

छविच्छेद

करादि अंगोपाङ्गों के छेदन का दण्ड देना।

ये चार नीतियाँ कब चलीं इसमें विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विज्ञों का मन्तव्य है कि प्रथम दो नीतियाँ ऋषभ के समय चलीं[८८] और दो भरत के समय। आचार्य अभयदेव के मन्तव्यानुसार ये चारों नीतियाँ भरत के समय चलीं।[८९] आचार्य भद्रबाहु और आचार्य

---

८६ स्वामी समादामभेददण्डोपायचतुष्टयम्।
जगद्व्यवस्थानगरीचतुष्पथमकल्पयत् ॥
—त्रिषष्टि १।२।९५९

(ख) णीतीओ उसभसामिम्मि चेव उप्पन्नाओ।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १५६

८७ स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७।

८८ आद्यद्वयमृषभकाले अन्ये तु भरतकाल इत्यन्ये।
—स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

८९ परिभासणा उ पढमा मण्डलबन्धम्मि होई बीया तु।
चारग छविच्छेदादि भरहस्स चउव्विहा नीई॥
—स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

मलय गिरी के अभितानुसार बन्ध (बेडी का प्रयोग) और घात (डण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे।[९०] और मृत्यु दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ।[९१] जिनसेनाचार्य के अनुसार वधबन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय चले।[९२]

खाद्यसमस्या का समाधान

कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल ये ऋषभदेव के पूर्ववर्ती मानवों का आहार था।[९३] किन्तु जनसंख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द मूल

(ख) परिहासणा उ पढमा, मडलिबन्धो उ होइ बीया उ।
चारगछविच्छेयाई भरहस्स चउव्विहा नीती ॥
—आवश्यक भाष्य गा० ३

९० निगडाइजमा बन्धा, घातो दण्डादितालणया।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१७

(ग) बन्धो निगडादिभिर्यम — संयमन, घातो दण्डादिभिस्ताडना, एतेऽपि अर्थशास्त्रवन्धघातास्तत्काले यथायोग प्रवृत्ता।
— आव० नि० मल० वृत्ति प० १९६-२

९१ मारणया जीववहो जन्ना नागाइयाण पूयातो।
—आव० नि० गा०

(ख) मारण जीववधो-जीवस्य जीविताद् व्यपरोपणं भरतेश्वरकाले समुत्पन्न।
—आव० नि० म० वृत्ति। ११२ अवखण्ड ० पृ० १९६

९२ शरीरदण्डनञ्चैव वधबन्धादिलक्षणम्।
नृणा प्रबलदोषाणा भरतेन नियोजितम् ॥
—महापुराण—तृतीय पर्व

९३ आसी य कदहारा मूलाहारा य पत्तहारा य।
पुप्फफलभोइणोऽवि य जइया किर कुलगरो उसभो ॥
(ख) आव० मूलभाष्य गा० ४ — त्रिषष्ठि १।२।९६० से ९६२
(ग) आवश्यक चूर्णि-जिनदास

ऋषका ।। स्यनेकधा । नामजिज्ञपत् ।।

कराया[100] और सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया।[101] व्यवहारसाधन-हेतु मान [माप] उन्मान [तोला मासा आदि वजन]

(घ) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति।
(ङ) कल्पसूत्र सुबोधिनी टीका पृ ४६६ साराभाई नवाब

१० लेहं लिवीविहाणं जिणेण बंभीए दाहिणकरेणं।
—आव नि गा २१२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति भाष्य गा ६ प १३२।
(ग) विशेषावश्यक भाष्य वृत्ति १३२।
(घ) अष्टादश लिपीर्ब्राह्म्या अपसव्येन पाणिना।
—त्रिषष्टि १।२।९६

(ङ) बंभीए दाहिणहत्थेण लेहो दाइतो।
—आवश्यक चूर्णि पृ १५६

(च) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका साराभाई पृ ४६६।
(छ) ऋषभदेव ने ही सम्भवत लिपि विद्या के लिए लिपिकौशल का उद्भावन किया। ऋषभदेव ने ही सम्भवत ब्रह्म विद्या की शिक्षा के लिए उपयोगी ब्राह्मी लिपि का प्रचार किया था।
—हिन्दी विश्व-कोष श्री नगेन्द्रनाथ वसु प्र भा प ६४

११ गणियं संखाणं सुन्दरीए वामेण उवइट्ठं।
—आवश्यक नियुक्ति गा २१२

(ख) सुन्दरीए वामहत्थेण गणितं।
—आवश्यकचूर्णि पृ १५६

(ग) विशेषावश्यक भाष्य वृत्ति १३२।
(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प १३२।
(ङ) दर्शयामास सव्येन सुन्दर्या गणितं पुन।
—त्रिषष्टि १।२।९६३

(च) विभु करद्वयेनाभ्यां लिखन्नक्षरमालिकाम्।
उपादिशल्लिपिं संख्यास्थानं चाङ्कैरनुक्रमात्॥
—महापुराण १६।१ ४।१०५

अवमान [गज, फुट, इंच] व प्रतिमान [छटांक, सेर, मन, आदि] सिखाये।[102] मणि आदि पिरोने की कला भी बताई।[103]

इस प्रकार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अभ्युदय के लिए पुरुषों को बहत्तर कलाएँ, स्त्रियों को चौंसठ कलाएँ और सौ शिल्पों का परिज्ञान कराया।[104] असि, मषि, और कृषि [सुरक्षा, व्यापार, उत्पादन] की व्यवस्था की।[105] अश्व, हस्ती, गायों, आदि

---

१०२ माणुम्माणवमाणपमाणगणिमाइ वत्थूणं ।

— आवश्यक निर्युक्ति गा० २१३

१०३ मणियाई दोराइसु पोता तह सागरंमि वहणाइं ।
ववहारो लेहवणं कज्जपरिच्छेयणत्थं वा ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१४

(ग) आवश्यक सूत्र हारिभद्रीयावृत्ति मूल भाष्य गा० ११ प० १३२

१०४ रज्जवासमज्झे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-रुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ चोवट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिन्नि वि पयाहियाए उवदिसइ ।

—कल्पसूत्र, सू० १९५। पृ० ५७, पुण्यविजय स०

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ३६, पृ० ७७ अमो० स० ।

(ग) एतच्च सर्वं सावद्यमपि लोकानुकम्पया ।
स्वामी प्रवर्तयामास, जानन् कर्तव्यमात्मनः ॥

—त्रिषष्टि १।२।९७१

१०५ असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च ।
कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥
तत्र वृत्तिं प्रजानां स भगवान् मतिकौशलात् ।
उपादिक्षत् सरागो हि स तदासीज्जगद्गुरुः ॥
तत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपिविधौ स्मृता ।
कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने ॥
वाणिज्यं वणिजां कर्म, शिल्पं स्यात् करकौशलम् ।
तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम् ॥

—महापुराण १७९ से १८२, पर्व १६ पृ० ३६२

पशुओं का उपयोग प्रारम्भ किया।[१५] जीवनोपयोगी प्रवृत्तियो का विकास कर जीवन को सरस शिष्ट और व्यवहार योग्य बनाया।[१७]

वर्णव्यवस्था

यौगलिका के समय म वर्ण-व्यवस्था नही थी। सम्राट श्री ऋषभदेव ने क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की।[१८] यह वर्णन आवश्यक निर्युक्ति आवश्यक चूर्णि आवश्यक मलयगिरि वृत्ति आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र-प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थो म स्पष्ट रूप स नही है। परवर्ती विज्ञो ने उस पर

(ख) पजापतिय प्रथम जिजीविषु ।
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा ॥
—बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र समन्तभद्राचार्य

१ ६ आसा हत्थी गावो गहिआइ रज्जसगहनिमित्त ।
चित्तण एवमाई चउव्विह सगह कुणइ ॥
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति गा० २ १ पृ १२८

१ ७ कलाद्युपायेन प्राप्तसुखवृत्तिकस्य चौर्यादिव्यसनासक्तिरपि न स्यात्, कर्माणि च कृषिवाणिज्यादीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि त्रीण्येतानि प्रजाया हितकराणि निर्वाहाभ्युदयहेतुत्वात
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-वृत्ति २ वक्षस्कार

(ख) पहुणा उ देसियाइ सव्वकलासिप्पकम्माइ
—आवश्यक निर्युक्ति गा २२६

(ग) अन्यदा सुखमासीन पुत्र नाभिप्रचोदिता ॥
उपसृत्य प्रजा सर्वा जीविकोपायमीप्सव ॥
कि नाथ करवामेति स्थिता भक्त्यानुकम्पया ॥
प्रजाभ्यो दर्शयामास कर्मशिल्पकलागुणान् ॥
—पुराणसार १५-१६।३।३६

१ ८ उत्पादितास्त्रयो वर्णा तदा तेनादिवेधसा ।
क्षत्रिया वणिज शूद्रा क्षतत्राणादिभिर्गुणै ॥
—महापुराण १८३।१६।३६२

अवश्य कुछ लिखा है,[१०९] पर दिगम्बराचार्य जिनसेन की तरह विशद रूप मे नही। यहाँ यह स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि वर्ण-व्यवस्था की संस्थापना वृत्ति और आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिए थी, न कि ऊँचता व नीचता की दृष्टि से।

मनुष्य जाति एक है। केवल आजीविका के भेद से वह चार प्रकार की हो गई है--व्रतसंस्कार से ब्राह्मण, शस्त्रधारण से क्षत्रिय, न्यायपूर्ण धनार्जन से वैश्य और सेवावृत्ति से शूद्र।[११०] कार्य से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते है।[१११]

आचार्य जिनसेन के मन्तव्यानुसार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने स्वय अपनी भुजाओ मे शस्त्र धारण कर मानवो को यह शिक्षा प्रदान की कि आततायियो से निर्बल मानवो की रक्षा करना शक्तिसम्पन्न व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। श्री ऋषभदेव के प्रस्तुत आह्वान से कितने ही व्यक्तियो ने यह कार्य स्वीकार किया। वे क्षत्रिय नाम से पहचाने गये।[११२]

---

१०९ अथवा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रभेदात् तत्र-'ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण, क्षत्रिया शस्त्रपाणय, कृषिकर्मकरा वैश्या शूद्रा प्रेषणकारका।'
—कल्पलता-समयसुन्दर गणी पृ० १६६

(ख) पउमचरिय-विमलसूरि उ० ३ गा० १११-११६

(ग) पश्चाच्चतुर्वर्णस्थापन कृतम्
—कल्पद्रुम कलिका० लक्ष्मी० पृ० १४४

११० मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रिया शस्त्रधारणात्।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्याच्छूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥
—महापुराण श्लोक० ४५-४६ पर्व० ३८ पृ० २४३ दि० भा०

१११ कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥
—उत्तराध्ययन २५।३३

११२ स्वदोर्भ्यां धारयन् शस्त्र क्षत्रियानसृजद् विभु।
क्षतत्राणनियुक्ता हि क्षत्रिया शस्त्रपाणय ॥
—महापुराण २४३।१६।३६८

श्री ऋषभदेव ने दूर दूर तक के प्रदेशों की अथा बल से पदयात्रा कर जन-जन के मन मे यह विचारज्योति प्रज्वलित की कि मनुष्य को सतत गतिमान् रहना चाहिए एक स्थान से द्वितीय स्थान पर वस्तुओं का आयात निर्यात कर प्रजा के जीवन मे सुख का सचार करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रस्तुत कार्य के लिए सन्नद्ध हुए वे वश्य की संज्ञा से अभिहित किय गये।[११३]

श्री ऋषभदेव ने मानवा को यह प्रेरणा प्रदान की कि कम युग मे एक दूसरे के सहयोग के बिना कार्य नही हो सकता। अत ऐसे सेवा निष्ठ व्यक्तियो की आवश्यकता है—जो बिना किसी भेदभाव के सेवा कर सक। जो व्यक्ति सेवा के लिए तैयार हुए उनको श्री ऋषभदेव ने शूद्र कहा।[११४]

इस प्रकार शस्त्र धारण कर आजीविका करने वाल क्षत्रिय हुए खेती और पशु पालन के द्वारा जीविका करने वाले वैश्य कहलाये और सेवा शुश्रूषा करने वाले शूद्र कहलाये।[११५]

ब्राह्मण वर्ण की स्थापना सम्राट भरत न की।[११६] स्थापना का

---

११३ ऊरुभ्या दर्शयन् यात्राम् अस्राक्षीद् वणिज प्रभु ।
जलस्थलादियात्राभि तद्वृत्तिर्वार्त्तया यत ॥
—महापुराण १४४।१६।३६८

११४ न्यग्वृत्तिनियतान् शूद्रान् पद्भ्यामेवासृजत् सुधी ।
वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नैकधा स्मृता ॥
—महापुराण २४५।१६।३६८

११५ क्षत्रिया शस्त्रजीवित्व अनुभूय तदाभवन् ।
वश्याश्च कृषिवाणिज्यपाशुपाल्योपजीविता ॥
—महापुराण १८४।१६।३६२

११६ ताहे भरहो रज्जं आयवत्ता ते य माउए पव्वइए णाऊण अदधितीए भणति—कि मम इयाणि भोगहि ? अधिति करेति कि ताए पीवराएवि सिरीए ? जा सज्जणा ण पेच्छति (गाथा) जदि माउरो मे इच्छन्ति तो भोगे देमि। भगव च आगतो ताहे भाउए भोगहि निमतेति ते ण इच्छन्ति वत अभितु। ताहे चितेति एतेसि

इतिवृत्त बताते हुए, आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, और कल्पसूत्र की टीकाओं में लिखा है कि सम्राट् भरत के के सभी अनुज सम्राट् भरत की अधीनता स्वीकार न कर भगवान् श्री ऋषभदेव के पास संयम ग्रहण कर लेते हैं तब सम्राट् भरत उनके

ताव ताणि परिचत्तसगाणि आगारविहारेण भवति ताव धम्मागुट्ठाण करेमीति पंचसयाणि सगडाण भत्तऊणं अमग ८ ताहे निग्गता, वन्दिऊण निमन्ताति, ताहे सामी भणति -हग आहाकम्म पुणो य आहड ण कप्पति साधूण । ताहे सो भणति — तत्ता मम पुव्वगतानाणि गण्हन्तु, तपि ण कप्पति रायपिण्डोत्ति ताहे सो सव्वतोपरिण अभिभूता भणति—सव्वभावेण अहं परिचत्ता तातेहिं, ताहे सो आहयमाणमकासी अच्छति, ताहे सो न सप्पाण जाणति भणति कि वावट्ठ ' ताहे सक्को भणति ज तव गुणुत्तरा न पूर्णा ताहे भरहो साराए सतारत्ता भणति—"मा कम्म पेसणादि मा करेह, अहं तु भे वित्ति कप्पामि, तुब्भेहि पढन्तेहि सुणन्तेहि जिणसाधुसुस्सूसण कुणन्तेहि अच्छियव्व । ताहे न लियसव्वमिय भुजीत, ते य भणन्ति—जहा तुब्भे जिता अहो भवान् वड्ढंते भय मा हणाहित्ति एव भणिता सन्तो आसुरत्तो चिन्तेति— केण हि जिता ' ताहे स अप्पणो मती उप्पज्जति कोहादिहि जिता मिति, ताहे भोगपरा सभावेति एवं ते उप्पन्ना माहणा णाम ।

— —आवश्यक चूर्णि जिन० पृ० २१२—१८

(ग) भरतोऽपि भ्रातृप्रव्रज्याकर्णनात सञ्जातसन्तापोऽधृति चक्रे, कदाचिद्भोगादीन् दीयमानान् पुनरपि गृह्णन्तीत्यालोच्य भगवत्समीप यागस्य निमन्त्रयच्चता । भोगैर्निमन्त्रितश्चिन्तयामास एषामिदानी परित्यक्तसङ्गानां आहारदानेऽपि तावद्धर्मानुष्ठान करोमीति पञ्चभि शकटशतैर्विचित्रमाहारमानाय्योपनिमन्त्र्याधाकर्माहृत च न कल्पते यतीनामिति प्रतिषिद्धे 5-कृतकारितेनान्येन निमन्त्रितवान् देवराट-गुणोत्तरान् पूजयन् । सोऽचिन्तयत् के मया गाढ्यतिरेकेण जात्यादिभिरतरा ?, पर्यालोचयता ज्ञात—श्रावका विरताविरततयाद गुणोत्तरा तेभ्यो दत्तमिति भरतश्च श्रावकानाहूयोक्तवान् भवद्भि

~

पास आते है और पुन राज्य ग्रहण करने के लिए अभ्यर्थना करते है किन्तु त्यक्त राज्य का वे वमन के समान जानकर पुन ग्रहण नही करते। तब सम्राट् भरत ने भ्राताओ को भोजन कराने हेतु पाँच सौ शकट भोजन मंगवाया और उन्हे भोजन ग्रहण करने के लिए निमंत्रित किया। पर भगवान् श्री ऋषभदेव ने कहा—आधाकर्मी राज्यपिण्ड आदि आहार श्रमणो के लिए त्याज्य है। शक्र द्र के निर्देशानुसार वह

प्रतिदिन मदीय भोक्तव्य कृष्यादि च न कार्य २ स्वाध्याय परराभितव्य ३ भुक्ते च मदीयगृहद्वारासन्नव्यवस्थितवेत्तव्यम् जितो भवान् वर्द्धते भय तस्मा मा हन मा हनेति ते तथैव कृतवन्त ।

—आवश्यक म न वृत्ति प ५।१

(ग) अन्धना शुक्तता रा यमेतेपा कि कृत मया ?
अनारतमतृप्तेन भस्मकामयिनेव हा ! ।।
अन्येभ्योऽपि ददानोऽस्मि लक्ष्मी भोगफलामिमाम् ।
तच्च मे भस्मनि हुतमिव मूढस्य निष्फलम् ।।
काकोऽप्याहूय काकेभ्यो दत्त्वाऽन्नाद्य पजीवति ।
ततोऽपि हीनस्तदह भोगान् भुञ्जे विना ह्यमून् ।।
दीयमानान् यदि पुनर्भोगान् भूयोऽपि मद्भुभ ।
आददीरन्नमी भिक्षा मासक्षपणिका इव ।।
एवमालोच्य भरत पादमूल जगद्गुरो ।
भ्रातृन् निमन्त्रयामास भोगाय रचिताञ्जलि ।।
प्रभुरप्यादिदेशैवमृज्वाशय ! विशाम्पते !
भ्रातरस्त महासत्त्वा प्रतिज्ञातमहाव्रता ।।
ससारासारता ज्ञात्वा परित्यक्तपूर्वेण ।
न खलु प्रतिगृह्णन्ति भोगान् भूयोऽपि वान्तवत ।।
× × × ×
एव विचिन्त्य शकटशत पञ्चभिरन्वाह ।
अनाय्याऽऽहारमनुजान् न्यमन्त्रयत् स पूर्ववत् ।।
स्वामी भूयाऽप्युवाचैवमभ्रादि भरतेश्वर ।
आधाकर्माऽऽहृत जातु यतीना न हि कल्पते ।।

महापुराण के अनुसार सम्राट् भरत षट्खण्ड पर दिग्विजय प्राप्त कर और अपार धन लेकर जब अयोध्या लौटे तो उनके मानस में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि इस विराट धन का त्याग कहाँ करना चाहिए ?[११९] इसका पात्र कौन व्यक्ति हो सकता है ? प्रतिभामूर्ति भरत ने शीघ्र ही निर्णय किया कि ऐसे विलक्षण व्यक्तियों को चुनना चाहिए जो तीनों वर्गों का चिन्तन मनन का आलोक प्रदान कर सकें।

सम्राट् भरत ने एक विराट उत्सव का आयोजन किया। उसमें नागरिकों को निमन्त्रित किया। विज्ञों की परीक्षा के लिए महल के मार्ग में हरी घास फल फूल लगा दिये।[१२०] जो व्रतरहित थे वे उस पर होकर महल में पहुँच गये और जो व्रती थे वे वहीं पर स्थित हो गये।[१२१] सम्राट् ने महल में न आने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि देव हमने सुना है कि हरे अंकुर आदि में अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं जो नेत्रों से भी निहारे नहीं जा सकते। यदि हम आपके पास प्रस्तुत मार्ग से आते हैं तो जो शोभा के लिए नाना प्रकार के सचित्त फल-फूल और अंकुर बिछाये गये हैं उन्हें हमें रौंदना

---

११९ भरतो भारत वर्ष निर्जित्य सह पार्थिवः ।
षष्ट्या वर्षसहस्रैस्तु दिशां निववृते जयात् ॥
कृतकृत्यस्य तस्यान्तश्चिन्तेयमुदपद्यत ।
परार्थे सम्पदास्माकी सोपयोगा कथं भवेत् ॥

—महापुराण ४–५।३८।२४ द्वि भा

१२० हरितैरङ्कुरैः पुष्पैः फलैश्चाकीर्णमङ्गणम् ।
सम्राडचीकरत्तेषां परीक्षायै स्ववेश्मनि ॥

—महापुराण ११।३८।२४ द्वि भा

१२१ तेष्वव्रता विना सङ्गात् प्राविक्षन् नृपमन्दिरम् ।
तानेकतः समुत्सार्य शेषानाह्वययत् प्रभुः ॥

—महापुराण १२।३८।२४ द्वि भा

पडता है तथा बहुत से हरितकाय जीवों की हत्या होती है।[१२२] सम्राट् ने अन्य मार्ग से उनको अन्दर बुलवाया[१२३] और उनकी दया वृत्ति से प्रभावित होकर उन्हे ब्राह्मण की सज्ञा दी और दान, मान आदि सत्कार से सम्मानित किया।[१२४]

वर्णोत्पत्ति के सम्बन्ध मे ईश्वर-कर्तृत्व की मान्यता के कारण वैदिक साहित्य मे खासी अच्छी चर्चा है। उस पर विस्तार से विश्लेषण करना, यहाँ अपेक्षित नही है। सक्षेप मे-पुरुष सूक्त मे एक सवाद है और वह सवाद ऋग्, शुक्लयजु, ऋक् और अथर्व इन चारो वेदो की सहिताओं मे प्राप्त होता है।

प्रश्न है—ऋषियो ने जिस पुरुष का विधान किया उसे कितने प्रकारो से कल्पित किया ? उसका मुख क्या हुआ ? उसके बाहु कौन बताये गये ? उसके (जाघ) उरु कौन हुए ? और उसके कौन पैर कहे जाते है ?[१२५]

उत्तर है — ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्यक्षत्रिय उसका बाहु, वैश्य उसका उरु, और शूद्र उसके पैर हुए।[१२६]

---

१२२ सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वङ्कुरादिषु।
निगोता इति सार्वज्ञ देवास्माभि श्रुत वच ॥
तस्मान्नास्माभिराक्रान्तम् अद्यत्वे त्वद्गृहाङ्गणम्।
कृतोपहारमार्द्राद्रैः फलपुष्पाकुरादिभि ॥

१२३. कृतानुबन्धना भूयश्चक्रिणा किल तेऽन्तिकम्।
प्रासुकेन पथाऽन्येन भेजु क्रान्त्वा नृपाङ्गणम् ॥
—महापुराण ३८।१३८-२४१

१२४ इति तद्वचनात सर्वान् सोऽभिनन्द्य दृढव्रतान्।
पूजयामास लक्ष्मीवान्, दानमानादिसत्कृतैः ॥
—महापुराण २०।३८।२४१

१२५ यत्पुरुष व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन्।
मुख किमस्य, कौ बाहू, का [वू] अरु, पादा [वु] उच्यते ?
—ऋग्वेद सहिता १०।९०, ११-१२

१२६ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत।
ऊरु तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत ॥
—ऋग्वेद सहिता-१०।९०।१२।

यह एक लाक्षणिक वर्णन है। पर पीछे के आचार्य लाक्षणिकता को विस्मृत कर शब्दो मे चिपट गये और उन्होने कहा—ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण भुजाओ से क्षत्रिय उरुओ से वैश्य और परो से शूद्र उत्पन्न हुए। एतदर्थ ब्राह्मण का मुखज क्षत्रिय को बाहुज वैश्य को उरुज और परिचारक का पादज लिखा है।[1]

वदिक साहित्य म अनेक स्थलो पर भगवान् श्री ऋषभदेव को ब्रह्मा कहा है। सभवत प्रस्तुत सूक्त का सम्बन्ध भगवान् श्री ऋषभदेव से ही हो।

जैन सस्कृति की तरह वदिक सस्कृति भी वर्णोत्पत्ति के सम्बन्ध मे विभिन्न मत रखती है। साथ ही जैन सस्कृति की तरह वह भी प्रारम्भ म वर्ण-व्यवस्था जन्म से न मानकर कर्म से मानती थी।[1 c]



(ख) शुक्ल यजुर्वेद सहिता। ३१।१ -११

(ग) कि बाहू किमुरु ?

—अथर्ववेद सहिता १६।६।६

(घ) विप्रक्षत्रियविटशूद्रा मुखबाहूरुपादजा ।
वराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणा ॥

—भागवत ११।१७।१३। द्वि भा पृ ८ ६

१२७ वक्त्राद् भुजाभ्यामूरुभ्या पद्भ्या चवाथ जज्ञिरे।
सृजत प्रजापतेर्लोकानिति धर्मविदो विदु ॥
मुखजा ब्राह्मणास्तात बाहुजा क्षत्रिया स्मृता ।
ऊरुजा धनिनो राजन् पादजा परिचारका ॥

—महाभारत श्लो ४–६ अध्याय २१६

१२८ न विशेषाऽस्ति वर्णाना सर्वब्राह्ममिद जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्ट हि कर्मभिवर्णता गतम् ॥

—महाभारत

द्वितीय अध्याय

साधक-जीवन

•

साधना के पथ पर

सम्राट् श्री ऋषभदेव ने दीर्घकाल तक राज्य का सचालन किया, प्रजा का पुत्रवत् पालन किया, प्रजा मे फैली हुई अव्यवस्था का उन्मूलन किया, अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार किया, नीति मर्यादाओ को कायम किया। वे प्रजा के शोषक नहीं, पोषक थे, शासक ही नही सेवक भी थे। श्रीमद्भागवत के अनुसार उनके शासन काल मे प्रजा की एक ही चाह थी कि प्रतिपल प्रतिक्षण हमारा प्रेम प्रभु मे

(ख) अप्रवृत्ति कृतयुगे कर्मणो शुभपापयो ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च तदाऽऽसन्न सकर ॥
त्रेतायुगे त्वविकल कर्मारम्भ प्रसिध्यति ।
वर्णाना प्रविभागाश्च त्रेताया तु प्रकीर्तिता ॥
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दु खिनस्तथा ।
तत प्रवर्तमानास्ते त्रेताया जज्ञिरे पुन ॥

—वायुपुराण ८।३३।४६।५७ आदि अध्याय

(ग) तस्मान्न गोऽश्ववत् किंचिज्जातिभेदोऽस्ति देहिनाम् ।
कार्यभेदनिमित्तेन सकेत कृत्रिम कृत ॥

—भविष्य पुराण, अध्याय ४

शिष्टानुग्रहाय, दुष्टनिग्रहाय, धर्मस्थितिसंग्रहाय च, ते च राज्यस्थितिश्रिया सम्यक् प्रवर्तमाना क्रमेण परेषा महापुरुषमार्गोपदेशकतया चौर्यादिव्यसननिवर्तनतो नारकातिथ्यनिवारकतया ऐहिका-

ही नगा रहे। वे किसी भी वस्तु की चाह नहीं करते थे।[११] अन्त में अपना उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र भरत को बनाकर और शेष निन्यानवे पुत्रों को पृथक-पृथक राज्य देकर स्वयं साधना के पथ पर बढ़ने के लिए प्रस्तुत हुए।[१]

सुभिक्षसुखसाधकतया च प्रशस्ता एवेति। महापुरुषप्रवृत्तिरपि सर्वत्र परार्थत्वव्याप्ता बहुगुणाल्प—दोषकार्यकारणविचारणापूर्विकेवेति।

स्थानाङ्गपञ्चमाध्ययनेऽपि—धम्मं च णं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पण्णत्ता तं जहा—छक्काया (१) गण (२) राया (३) गाहावई (४) सरीरं (५) मित्यालापकवृत्तौ राजो निश्रामाश्रित्य राजा नरपतिस्तस्य धर्मसहायकत्वं दुष्टेभ्य साधुरक्षणादित्युक्तमस्तीति परमकरुणापरीतचेतस परमधर्मप्रवर्तकस्य ज्ञानत्रितययुक्तस्य भगवतो राजधर्मप्रवर्तकत्वं न कापि अनौचित्यी चेतसि चिन्तनीया।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका—दूसरा वक्षस्कार

१२६ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण।

—श्रीमद्भागवत ५।४।१८ पृ० ५५८–५५९

१३ (क) उसभदित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ।

—जम्बू० सू० ३६ पृ० ७७ अमोल

(ख) उसभदिसइत्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पृ० ५७ पुण्य

(ग) त्रिषष्टि० १।३।१ से १७ पृ० ९८

(घ) स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज।

—श्रीमद्भागवत ५।५।२८।५६३

दान

अभिनिष्क्रमण के पूर्व श्री ऋषभदेव ने प्रभात के पुण्य-पलों में एक वर्ष तक एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन दान दी।[१३१] इस प्रकार एक वर्ष में तीन अरब अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया।[१३२] दान देकर, जन-जन के अन्तर्मानस में दान की भव्य-भावना उद्बुद्ध की।

महाभिनिष्क्रमण

भारतीय इतिहास में चैत्र कृष्णा अष्टमी का दिन[१३३] सदा स्मरणीय रहेगा, जिस दिन सम्राट् श्री ऋषभ राज्य-वैभव को ठुकराकर, भोग-विलास को तिलाञ्जलि देकर, परमात्मतत्त्व को जागृत करने के लिए "सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" सभी पाप प्रवृत्तियों का परित्याग करता हूँ, इस भव्य-भावना के साथ विनीता नगरी से निकलकर सिद्धार्थ उद्यान में, अशोक वृक्ष के नीचे, षष्ठ भक्त के तप

---

१३१ एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायरासाओ ॥

—आव० निर्यु० गा० २३६

(ख) त्रिषष्टि० १।३।२३

१३२. तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ।
असियं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिण्णं ॥

—आव० नि० गा० २४२

(ख) त्रिषष्टि० १।३।२४।प० ६८

१३३ जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चेत्तबहुले तस्स णं चेत्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पुण्य० पृ० ५७

(ग) चेत्तबहुलट्ठमीए चउहिं सहस्सेहिं सो उ अवरण्हे।
सीया सुदंसणाए सिद्धत्थवणम्मि छट्ठेणं ॥

—आव० नि० गा० ३३६

से युक्त होकर सर्वप्रथम परिव्राट बने।[134] भगवान् के प्रेम से प्रेरित होकर उग्रवंश भोगवंश राजन्य वंश और क्षत्रिय वंश के चार सहस्र साथियो ने भी उनके साथ ही संयम ग्रहण किया।[135] यद्यपि उन चार

(ग) तदा च चैत्रबहुलाष्टम्या चन्द्रमसि श्रिते।
नक्षत्रमुत्तराषाढामह्नो भागेऽथ पश्चिम ॥
भव जयजयारावकोलाहलमिषाद् भृशम्।
उद्गिरद्भिर्मुदमिव वीक्ष्यमाणो नगामर ॥
उच्चखान चतसृभिमु ष्टिभि शिरस कचान्।
चतसृभ्यो दिग्भ्य शेषामिव दातुमना प्रभु ॥

—त्रिषष्ठि १।३। ६५ से ६७

१३४ जाव विणीय रायहाणि मज्झमज्झेण णिगच्छइ णिगच्छइत्ता जणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तणेव उवाग च्छइ उवाग च्छइत्ता असोगवरपायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठिय लोय करेइ२त्ता छट्ठ ए भत्तण अप्पाणएण—

—कल्पसून सू १९५ पृ ५७

(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सू० ३६ प ८–८१ अमोल

१३५ उग्गाण भोगाण राइन्नाण च खत्तियाण च।
चउहि सहस्सेहुसभो सेसाउ सहस्सपरिवारा।

—आव नि गा २४७

(ख) उग्गाण भोगाण राइन्नाण च खत्तियाण च चउहि सहस्सहि सद्धि एग देवदूसमादाय मु डे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइए।

—कल्पसूत्र सू १९५ प ५७

(ग) उग्गाण भागाण रायण्णाण च ख त्तियाण च।
चउहि सहस्सहि ऊसहो सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥

—समवायाग १५

(घ) उग्गाण भागाण राइन्नाण खत्तिआण चउहि सहस्सेहि सद्धि—

—जम्बूद्वीप सू ३६ पृ ८–८१ अमोल

सहस्र साथियों को भगवान् ने प्रव्रज्या प्रदान नहीं की, किन्तु उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही लुंचन आदि क्रियाएँ कीं।[136]

विवेक के अभाव में

भगवान् श्री ऋषभदेव श्रमण बनने के पश्चात् अखण्ड मौनव्रती बनकर एकान्त-शान्त स्थान में ध्यानस्थ होकर रहने लगे।[137] जिनसेन के अनुसार उन्होंने छह महीने का अनशन व्रत अंगीकार किया। श्वेताम्बर साहित्य में ऐसा स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। वहां भिक्षा के सम्बन्ध में जो चित्रण मिलता है, वह इस प्रकार है—घोर

(ङ) चतुःसहस्रगणना नृपाः प्राव्राजिषुस्तदा।
गुरोर्मतमजानाना स्वामिभक्त्यैव केवलम्॥
यदस्मै रुचितं भर्त्रे तदस्मभ्यं विशेषतः।
इति प्रसन्नदीक्षास्ते केवलं द्रव्यलिङ्गिनः॥

—महापुराण पर्व १७ श्लो० २१२–२१३ पृ० ३८१

(च) त्रिषष्टि १।३।७८ से ८० प० ७०।

१३६ चउरो साहस्सीओ, लोयं काऊण अप्पणा चेव।
जं एस जहा काही तं तह अम्हेवि काहामो॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३७

१३७ (क) णत्थि ण तस्स भगवन्तस्स कत्थइ पडिबन्धे।

—जम्बू० प्र० २ वक्षस्कार सू० ३६

(ख) अथ कायं समुत्सृज्य तपोयोगे समाहितः।
वाचंयमत्वमास्थाय तस्थौ विश्वेड् विमुक्तये॥
षण्मासानशनं धीरः प्रतिज्ञाय महाधृतिः।
योगैकाग्र्यनिरुद्धान्तर्बहिष्करणविक्रियः॥

—महापुराण १८।१–२ पृ० ३६७

(ग) जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव।

—भागवत ५।५।२९ पृ० ५६३

अभिग्रहो का ग्रहण कर अनासक्त बन भिक्षाहेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते थे[138] पर भिक्षा और उसकी विधि से जनता अनभिज्ञ थी अत भिक्षा उपलब्ध नही होती थी।[139] वे चार सहस्र श्रमण चिरकाल तक यह प्रतीक्षा करते रहे कि भगवान् मौन छोडकर पूर्ववत् हमारी सुध बुध लेगे सुख सुविधा का प्रयत्न करगे पर भगवान् आत्मस्थ रहे कुछ नही बोल। वे द्रव्यलिगधारी श्रमण भूख-प्यास से सत्रस्त हो सम्राट भरत के भय से[140] पुन गृहस्थ न बनकर वल्कलधारी तापस आदि हो गये।[141] वस्तुत विवेक के अभाव म साधक साधना से पथभ्रष्ट हो जाता है।

साधक जीवन

भगवान् श्री ऋषभदेव अम्लान चित्त से, अव्यथित मन से भिक्षा के लिए नगरो व ग्रामो मे परिभ्रमण करते। भावुक मानव

---

१३८ उसभो वरवसभगई घेत्तूण अभिग्गह परमघोर।
वोसट्ठचत्तदेहो विहरइ गामाणुगाम तु॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा ३३८

१३९ न वि ताव जणो जाणइ का भिक्खा केरिसा व भिक्खयरा ?
—आवश्यक नि गा ३३९

(ख) ण्ण भिक्खस्स अतीति तो सामिलो ऐ आणतोसि वत्थेहिं आसेहि य हत्थीहि आभरणेहि कन्नाहि य निमन्तेत्ति।
—आवश्यक चूर्णि पृ १६२

१४० भरतलज्जया गृहगमनमयुक्तम्, आहारमन्तरेण चासितु न शक्यते—
—आवश्यक नि० मल प २१६

(ख) जेण जणो भिक्ख ण याणति दाउ तो जे ते चत्तारि सहस्सा भिक्ख अलभता तेण माणेण घरपि ण वच्चन्ति भरहस्स य भएण।
—आवश्यक चूर्णि पृ १६२

१४१ ते भिक्खमलभमाणा वणमज्झे तावसा जाता।
—आवश्यक नि गा ३३९

चित्रित किया है। आगमन का प्रस्तुत वर्णन श्रमण भगवान् महावीर के अनार्य देशों में विहरण के समान है।[144]

विशिष्ट लाभ

एक बार ऐसा हुआ। कुरुजनपदीय गजपुर के अधिपति बाहुबली के पौत्र एवं सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि सुमेरु पर्वत श्याम वर्ण का हो गया है। उसे मैंने अमृत कलश से अभिसिक्त कर पुनः चमकाया।[145] नगरश्रेष्ठी सुबुद्धि ने उसी रात्रि में स्वप्न देखा कि सूर्य की हजार किरणें अपने स्थान से चलित हो रही थीं कि श्रेयांस ने उन रश्मियों को पुनः सूर्य में संस्थापित कर दिया।[146] राजा

---

१४४ तुलना कीजिए—आचारांग प्रथम श्रु॰ अध्या॰ ९ उद्द॰ ३।

१४५ छउमत्थो य भगवं संवच्छरमणसणेणं विहरिऊण गयपुरं गतो, तत्थ भरहस्स पुत्तो सोमजसो, तस्स पुत्तो बाहुबलिस्स पुत्तो सोमप्पभो सेयंसो य, ते य तदिवसं जया णगरसेट्ठी य सुमिणा पासन्ति ता रत्ति, समागता य तिन्नि वि सामन्ता सभीवे वट्टंति, भयमा—सुणह अज्ज मया ज सुमिणो दिट्ठ मेरु त्ति चलिता, सेहायता मिलायमाणप्पभा मया य अमयकलसेण अभिसित्ता सभाविनो जाता पडिबुद्धो सहसा।

-आवश्यक चूर्णि जिन॰ पृ॰ १६०-१६२

(ख) कुरुजणवए गयपुरं नाम नगरं, तत्थ बाहुबलिपुत्तो सोमप्पभो राया, तस्स पुत्तो सेज्जंसो जुवराया, सो सुमिणे मंदरं पव्वयं सामवण्णयं पासइ. ततो अणेण अमयकलसेण अभिसित्तो

करने के लिए अभ्यर्थना करते पर कोई भी विधिवत् भिक्षा न देता। भगवान् उन वस्तुओ को बिना ग्रहण किये जब उलटे परो लौट जाते तो वे नही समझ पाते कि भगवान् को किस वस्तु की आवश्यकता है ?

श्रीमद्भागवतकार ने भगवान् श्री ऋषभदेव को श्रमण बनने के पश्चात् अज्ञ व्यक्तियो न जो दारुण कष्ट प्रदान किय उसका शब्द चित्र उपस्थित किया है[143] पर वसा वर्णन जन साहित्य मे नही है। जन साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग का मानव इतना क्रूर प्रकृति का नही था जितना भागवतकार ने

कोऽप्यवादीन्दि सज्ज स्नानीय वसन जलम्।
तैल पिष्टातकश्चेति स्नाहि स्वामिन् प्रसीद न ॥
कोऽप्यूचे स्वोपयोगन स्वामिन् ! मम कृतार्थय।
आत्मचन्दनकपूरकस्तूरीयक्षकर्दमान् ॥
कोऽप्युवाच जगन्नाथ ! रत्नालङ्करणानि न।
स्वाङ्गाधिरोपणात् स्वामिन्नलकुरु दया कुरु ॥
एव व्यज्ञपयन् कोऽपि गृहे समुपविश्य मे।
स्वामिन्नङ्गानुकूलानि दुकूलानि पवित्रय ॥
कश्चिदप्यब्रवीदेव देव ! देवाङ्गनोपमाम्।
प्रभो ! गृहाण न कन्या धन्या स्मस्त्वत्समागमात ॥
कोऽप्यूचे पादचारेण क्रीडयाऽपि कृतेन किम् ?।
इममारोह शलाभ कुञ्जर राजकुञ्जर ! ॥
—त्रिषष्ठि १।३।२४१-२४८

१४३　तत्र तत्र　पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वट शिबिर-व्रजघोषसार्थगिरिवना श्रमादिष्वनुपथमवनिचर परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जन ताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रज प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तस्तदविगणयन्नेवा सत्सस्थान एतस्मिन् देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वे महिमावस्थानेनासमारोपिताहममाभिमानत्वादविखण्डितमना पृथिवी मेकचर परिबभ्राम।

—भागवत ५।५।३।५६४

चित्रित किया है। भागवत का प्रस्तुत वर्णन श्रमण भगवान् महावीर के अनार्य देशों में विहरण के समान है।[१४४]

विशिष्ट लाभ

एक वर्ष पूर्ण हुआ। कुरुजनपदीय गजपुर के अधिपति बाहुबली के पौत्र एवं सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि सुमेरु पर्वत श्याम वर्ण का हो गया है। उसने उसे अमृत कलश से अभिषिक्त कर पुनः चमकाया।[१४५] नगरश्रेष्ठी सुबुद्धि ने उसी रात्रि में स्वप्न देखा कि सूर्य की हजार किरणें अपने स्थान से चलित हो रही थीं कि श्रेयांस ने उन रश्मियों को पुनः सूर्य में संस्थापित कर दिया।[१४६] राजा

---

१४४ तुलना कीजिए—आचारांग प्रथम श्रु० अध्या० ९ उद्द० ३ ग।

१४५ छउमत्थो य वरिसं अणाहारो विहरिऊण गयपुरं गता, तत्थ भगवंतस्स पुत्तो रज्जगो, अन्ने भणंति बाहुबलिस्स सुता सोमप्पभो राया य, त य रत्तिं जया णगरसेट्ठी य सुमिणं पासंति त रत्तिं, समागता य तिन्निवि सामस्स सगीवे करंति, सयमा—सुमण अज्ज मया ज सुमिणो दिट्ठ—मरु गिरि चलिता, तलागता सिज्जायमाणप्पभा मया य अमयकलसेण अभिसित्ता सोभाविता जाता पडिबुद्धो य चिन्तेइ।

आवश्यक चूर्णि जिन० पृ० १६२–१६३

(ख) कुरुजणवा गयपुर नाम नगर, तत्थ बाहुबलिपुत्तो सोमप्पभो राया, तस्स पुत्तो सेज्जसो जुवराया, सो सुमिणे मन्दरं पव्वयं सामवण्णयं पासइ, तत्तो अमयकलसेण अभिसित्तो अब्भहियं सोभिउमाढत्तो।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० २१७

(ग) त्रिषष्टि १।३।२४४–२४५।

१४६ नगरसेट्ठी सुबुद्धिनामा, सो सूरस्स रस्सीसहस्सं ठाणाओ चलियं पासति, नवरं सिज्जंसेण हत्थुत्तं सो य अहियतरं तेयसम्पुण्णो जातो।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० १४५।

सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि एक महान् पुरुष शत्रुओ से युद्ध कर रहा है श्रेयास ने उसे सहायता प्रदान की जिससे शत्रु का बल नष्ट हो गया।[१४७] प्रात होने पर सभी स्वप्न के सम्बन्ध मे चिन्तन मनन करने लगे। चिन्तन का नवनीत निकला कि अवश्य ही श्रेयास को विशिष्ट लाभ होने वाला है।[१४८]

(ख) नगरसेट्ठी सुबुद्धी नाम सो सुमिए पासइ सूरस्स रस्सिसहस्सं ठाणातो चलित नवरि सेज्जसेण हुक्खुत्त ततो सो सूरो अहिययरलेयसम्पन्नो जातो।

—आवश्यक मल वृ प० २१७–२१८

(ग) त्रिषष्ठि १।३।२४६–२४७।

नोट—आवश्यक चूर्णि मे जो स्वप्न नगरश्रेष्ठी का दिया है वह आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति आवश्यक मलयगिरि वृत्ति और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे राजा सोमप्रभ का दिया है और सोमप्रभ का स्वप्न नगर श्रेष्ठी का दिया है।

—लेखक

(घ) सेट्ठी भणती—सुणह त मया दिट्ठ—अज्ज किल कोऽपि पुरिसो महप्पमाणो महता रिवुबलेण सह जुज्झन्तो दिट्ठो तो सेज्जस सामा य स सहायो जातो तता अणेण पराजित परबल एय दट्टु ण म्हि पडिबुद्धो।

—आवश्यक चूर्णि १३३

१४७ (क) राइणा एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण सह जुज्झन्तो दिट्ठो।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति प १४५

(ख) राइणा सुमिणे एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण जुज्झन्तो दिट्ठो सेज्जसेण साहज्ज दिण्ण ततो तेण तब्बल भग्ग नि।

—आवश्यक मल वृत्ति प २१८।१

(ग) त्रिषष्ठि १।३।२४८

१४८ कुमारस्स महतो कोऽवि लाभो भविस्सइ त्ति।

—आवश्यक मल वृ प २१८।१

अक्षय तृतीया

भगवान् श्री ऋषभदेव उसी दिन विचरण करते हुए गजपुर पधारे। चिरकाल के पश्चात् भगवान् को निहार कर पौरजन प्रमुदित हुए। श्रेयांस भी अत्यधिक आह्लादित हुआ। भगवान् परिभ्रमण करते हुए श्रेयांस के यहाँ पधारे।[189] भगवान् के दर्शन और भगवद्रूप के चिन्तन से श्रेयांस को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई।[190] स्वप्न का सही तथ्य परिज्ञान हुआ। उसने प्रेमपरिपूरित करों से ताजा आये हुए इक्षु रस के कलशों को ग्रहण कर भगवान् के कर कमलों में रस प्रदान किया।[191] इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव को

---

१८९. भगवंति अणाउलो गयकप्परुक्खमसरिसं अडमाणो सेयंसभवणमइगता।

—आव० म० वृ० २१८

१९० जाइस्सरणं जायं -

—आव० म० वृ० २१८

(ख) समीक्ष्य भगवद्रूपं श्रेयान्जातिस्मरोऽभवत्।

—महापुराण जिन० ७८।२०।४५२

१९१ (क) गयपुर सेज्जंस खोयरसदाण वसुहार पीढ गुरुपूया।

—आव० निर्युक्ति० गा० ३४५

(ख) उसभस्स उ पारणए

इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स।

—आव० नि० गा० ३४८

(ग) उसभस्स पढमभिक्खा,

खोयरसो आसि लोगणाहस्स।

—समवायांग

(घ) ततो निशातनिर्दोषभिक्षादानविधि [illegible] स तु।
गृह्यतां कल्पनीयोऽयं रस इत्यवदद् विभुम्।,
प्रभुरप्यञ्जलीकृत्य पाणिपात्रमदापयत्।
उत्क्षिप्यादित्सत्य माऽऽसीदाररसकुम्भानलोठयत्॥
भूयांसि रस पाणिपात्रे भगवता ममौ।
श्रेयांसस्य तु हृदये ममुर्न हि मुदस्तदा॥

एक सम्वत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त हुई[152] और सब प्रथम इक्षुरस का पान करने के कारण वे काश्यप के नाम से भी विश्रुत हुए।[153]

स्थानो नु स्तम्भितोऽन्वासीद् व्योम्नि लग्नशिखो रस ।
अञ्जली स्वामिनोऽचिन्त्यप्रभावा प्रभव खलु ॥
ततो भगवता तेन रसेनाऽकारि पारणम् ।
सुरासुरनृणा नेत्र पुनस्तद्दर्शनामृतैं ॥

—त्रिषष्ठि० १।३।२६१-२६५

(ङ) अ यान् सोमप्रभेणामा लक्ष्मीमत्या च सादरम् ।
रसमिक्षोरदात प्रासुभुक्तानीक्षुतपाणय ॥

—महापुराण जिन० १ ०।२०।४२४

(च) एएसि ए चउव्वीसाए तित्थगराण चउव्वीस पढमभिक्खा दायारो होत्था त जहा सिज्जस ।

—समवायाङ्ग

१५२ सवच्छरेण भिक्खा लद्धा
उसमेण लोगनाहेण ।
सेसेहि बीयदिवस
लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४२

(ख) सवच्छरेण भिक्खा लद्धा
उसभेण लोयणाहेण ।

—समवायाग

१५३ कास—उच्छू तस्स विकारो—कास्य रस सो जस्स पाण सो कासवो उसभ स्वामी ।

—दशवकालिक—अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) कासो नाम इक्खु भण्णइ जम्हा त इक्खु पिवति तेन कासवा अभिधीयन्ते ।

—दशवैकालिक—जिनदास चूर्णि पृ० १३२

(ग) पुव्वगा य भगवतो इक्खुरस पिविताइता तेण गोत्त कासव ति ।

—आवश्यक चूर्णि जिनदास पृ १५२

आचार्य जिनसेन के शब्दों में काश्य तेज को कहते हैं। भगवान् श्री ऋषभदेव उस तेज के रक्षक थे अतः काश्यप कहलाये।[१५४]

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में सर्व प्रथम वैशाख शुक्ला तृतीया को श्रेयांस ने इक्षु रस का दान दिया अतः वह तृतीया इक्षु-तृतीया या अक्षय तृतीया पर्व के रूप में प्रसिद्ध हुई।[१५५] दान से वह तिथि भी अक्षय हो गई।



(घ) वर्षीयान् वृषभो ज्यायान्,
पुरुराद्य प्रजापतिः ।
ऐक्ष्वाकु [क] काश्यपो ब्रह्मा,
गौतमो नाभिजोऽग्रजः ॥

—धनञ्जय नाममाला ११४ पृ० ५७

१५४ काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात् ।

—महापुराण २६६।१६।३७०

१५५ राधशुक्लतृतीयायां दानमासीत् तदक्षयम् ।
पर्वाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्त्तते ॥
श्रेयांसोपज्ञमवनौ दानधर्मः प्रवृत्तवान् ।
स्वाम्युपज्ञमिवाऽशेषव्यवहारनयक्रमः ॥

—त्रिषष्टि० १।३।३०१–३०२

(ख) वैशाख सुदि तृतीयारूप पर्वत्वेन मान्यं जातं ।

—कल्पलता समo पृ० २०६।१

(ग) तद्दिनं लोके अक्षयतृतीया जाता ।

—कल्पद्रुम कलिका पृ० १४९

(घ) वैशाखमासे राजेन्द्र ! शुक्लपक्षे तृतीयका ।
अक्षया सा तिथिः प्रोक्ता, कृत्तिका रोहिणीयुता ॥

तीर्थंकर जीवन



अरिहन्त के पद पर

एक हजार वर्ष तक श्री ऋषभदेव शरीर से ममत्व रहित होकर वासनाओं का परित्याग कर, आत्म-आराधना संयम साधना और मनोमंथन करते रहे।[१५६] जब भगवान् अष्टम तप की साधना करते हुए पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे

---

१५६ उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वाससहस्सं
निच्चं वोसट्ठकाये चियत्तदेहे जाव अप्पाणं
भावमाणस्स एक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं ॥

—कल्पसूत्र सू० १९६ प ५८ पुण्य

(ख) सेणं भगवं वासावासवज्जं हेमन्तगिम्हासु गामे एगराईए नगरे पंचराईए ववगयहास-सोग-अरइ रइ भय-परित्तास णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासी तच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवेणे अरत्ते लेट्ठुंमि कंचणम्मि समे इहलोए परलोए अपडिबद्धे जीविअ मरणे निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंघणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ। तस्स णं भगवन्तस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्सं विइक्कन्ते।

—जम्बूद्वीप सू० ४-४१ पृ० ८४ अमो

तओ णं जे से हेमन्ताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुले तस्स णं फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि

ध्यान-मुद्रा मे अवस्थित थे। फाल्गुन कृष्णा ग्यारस का दिन था, पूर्वाह्न का समय था, आत्म-मथन चरम सीमा पर पहुँचा। आत्मा पर से घन-घाति कर्मो का आवरण हटा, भगवान् को केवल ज्ञान और केवल दर्शन का अपूर्व आलोक प्राप्त हुआ। जैनागमो मे जिसे केवल

पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कल्पसूत्र० सू० १६६ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) तित्थयराण पढमो उसभसिरी विहरिओ निरुवसग्गं।
अट्ठावओ नगवरो अग्गा भूमी जिणवरस्स ॥
छउमत्थप्परिआओ वाससहस्सं तओ पुरिमताले।
निग्गोहस्स य हिट्ठा उप्पन्नं केवलं नाणं ॥
फग्गुणबहुले इक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेण।
उप्पन्नम्मि अणन्ते महव्वया पंच पन्नवए ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३८ से ३४०

(ग) फग्गुणबहुलेक्कारसि उत्तरसाढाहि नाणमुसभस्स।

—आवश्यक नि० गा० २६३

(घ) अथ व्रतात् सहस्राब्द्या, फाल्गुनैकादशीदिने।
कृष्णे तथोत्तराषाढास्थिते चन्द्रे दिवामुखे ॥
उत्पेदे केवलज्ञानं त्रिकालविषयं विभो।
हस्तस्थितमिवाऽशेष, दर्शयद् भुवनत्रयम् ॥ ।३।५१४

—त्रिषष्ठि०

(ङ) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति० पृ० ८५ अमो० —महापुराण २४।६।५७३

(च) समवायाङ्ग १५७ गा० ३३–चक्र प्राणिघातकम् ?

(छ) लोक प्रकाश ३२, ५९१ स्वानादिदेश स।

(ज) फाल्गुने मासि त[illegible] —त्रिषष्ठि १।३।५१५
उत्तराषाढम[illegible] श्रेयोनुबन्धि यत्।
६ वमेवा प्राथमकल्पिकी ॥

—महापुराण जिन० २४।८।५७३

चक्ररत्न या पुत्र रत्न तो इस लोक के जीवन का ही सुख प्रदान करने वाले हैं किन्तु इस लोक और परलोक दोनों में ही जीवन को सुखी बनाने वाला भगवान का दर्शन ही है[१६५] अत मुझे सर्वप्रथम भगवान श्री ऋषभदेव के दर्शन व चरण स्पर्श करना चाहिए।[१६६]

माँ मरुदेवी की भक्ति

सम्राट् भरत भगवान् के दर्शन हेतु सपरिजन प्रस्थित हुए। माँ मरुदेवी भी अपने लाडले पुत्र के दर्शन हेतु चिरकाल से छटपटा रही थी प्यारे पुत्र के वियोग से वह व्यथित थी। उसके दारुण कष्ट की कल्पना करके वह कलप रही थी। प्रतिपल-प्रतिक्षण लाडले लाल की स्मृति से उसके नेत्रों में आँसू बरस रहे थे।[१६७] जब उसने सुना कि उसका प्यारा लाल विनीता के बाग में आया है तो वह भी भरत के साथ हस्ती पर आरूढ होकर चल पडी। भरत के विराट वैभव को देखकर उसने कहा—बेटा भरत! एक दिन मेरा प्यारा ऋषभ भी इसी प्रकार राज्यश्री का उपभोग करता था पर इस समय वह क्षुधा पिपासा से पीडित होकर कष्टों को सहन करता हुआ विचरता है। पुत्र प्रेम से आँख छलछला आई। भरत के द्वारा तीर्थङ्करों की दिव्य विभूति का शब्दचित्र प्रस्तुत करने पर भी उसे सन्तोष नहीं हो रहा था।[१६८] किन्तु समवसरण के सन्निकट

---

१६५ तायम्मि पूइए चक्कं पूइयं पूअणारिहो ताओ।
इहलोइयं तु चक्कं परलोअसुहावहो ताओ।
—आवश्यक नियुक्ति गा २४२

१६६ निश्चिचायति राजेन्द्रो गुरुपूजनमादित।
—महापुराण २४।१।५७३

१६७ त्रिषष्ठि० पर्व १ स ४ पृ १२४।२५

१६८ भगवतो य माता भणति भरहस्स रज्जविभूति दट्टूणं—मम पुत्तो एवं चेव णग्गओ हिंडति। ताहे भरहो भगवतो विभूति वण्णेति सा ण पत्तियति ताहे गयक्खंधेण भणिता—एहि जा ते भगवतो विभूति

पहुँचते ही श्री ऋषभदेव को ज्यों ही समवसरण में इन्द्रों द्वारा अर्चित देखा त्यों ही चिन्तन का प्रवाह बदला। आर्त ध्यान से शुक्ल ध्यान में लीन हुई। ध्यान का उत्कर्ष बढ़ा, मोह का बन्धन सर्वांशतः टूटा। वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का नाश कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन की धारिका बन गई[169] और उसी क्षण शेष कर्मों को भी नष्ट कर हस्ती पर आरूढ़ ही सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।[170]

दरिसेमि, जदि एरिसिया मम सरिस्सागेण अत्थि त्ति, ताए उरिस्सवयेण णीति।

—आवश्यक चूर्णि—जिन० पृ० १८१

(ख) मम पुत्तस्स एरिसी रज्जसिरी आसि सयस्स मा बुद्धाविरागापरिगओ समओ, हितुच्छति उप्पय दरियाइया भगवन्त सितअमगविभूइं दट्ठ तम्मवि न पत्तिच्छिपाइया, पुत्तगोणं य से किल नाममत्तबखु जाय एयवोए

— आवश्यक मलय० वृत्ति० पृ० २२६

१६६ भगवता य छत्तादिच्छत्तं पेच्छतीए चेव केवलनाणं उप्पन्न,

—आव० चूर्णि० पृ० १८१

(ख) ततो तीए भगवओ छत्ताइच्छत्तं पासतीए चेव केवलमुप्पण्णं—

—आव० मल० वृ० २२६

(ग) साऽपश्यत् तीर्थकृल्लक्ष्मीं मुनारातिशयान्विताम्,
तस्यास्तद्दर्शनानन्दात् तन्मयत्वमजायत ॥
साऽरुरोह क्षपकश्रेणिमपूर्वकरणक्रमात् ।
क्षीणाष्टकर्मा युगपत्, केवलज्ञानमासदत् ॥

—त्रिषष्ठि० १।३।५२८-५२६

१७०. त समयं च ण आयु खुट्टं सिद्धा, देवेहि य से पूया कता।

—आवश्यक चूर्णि० जिन० पृ० १८१

(ख) करिस्कन्धाधिरूढैव स्वामिनी मरुदेव्यथ।
अन्तकृत्केवलित्वेन, प्रपेदे पदमव्ययम् ॥

—त्रिषष्ठि० १।३।५३०

कितने ही आचार्यों का यह अभिमत है कि भगवान् के शब्द कर्णकुहरों में गिरने से उन्हें आत्मज्ञान हुआ और वे मुक्त हो गईं।[१७१] प्रस्तुत अवसर्पिणी में सर्वप्रथम केवलज्ञान श्री ऋषभदेव को हुआ और मोक्ष मरुदेवी माता को।[१७२]

आचार्य जिनसेन ने स्त्रीमुक्ति न मानने के कारण ही प्रस्तुत घटना का उल्लेख नहीं किया है।

धर्मचक्रवर्ती

जिन बनने के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव स्वयं कृतकृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकान्त शान्त स्थान में अपना शेष जीवन व्यतीत करते पर वे महापुरुष थे। उन्होंने समस्त प्राणियों की रक्षारूप दया के पवित्र उद्देश्य से प्रवचन किया।[१७३] एतदर्थ ही भगवान् श्री महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन में श्री ऋषभदेव को धर्म का मुख कहा है।[१७४] और ब्रह्माण्ड पुराण में भी श्री ऋषभदेव

---

१७१ अन्ने भणंति—भगवओ धम्मकहासद्दं सुणंतीए तक्कालं च तीए खुट्टमाउय ततो सिद्धा।

—आवश्यक मलय वृ० २२९

१७२ मरुय मयस्स देहो त

मरुदेवीए पढमसिद्धोत्ति।

—आवश्यक नियुक्ति

(ख) पढमसिद्धोत्ति काऊण खीरोदे छूढा।

—आवश्यक चूर्णि प० १८१

(ग) एतस्यामवसर्पिण्यां सिद्धोऽसौ प्रथमस्तत।

सत्कृत्य तद्वपुः क्षीरनीरधौ निदधेऽमरैः॥

—त्रिषष्ठि १।३।५३१

१७३ सव्वजग जीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।

—प्रश्नव्याकरण सम्वरद्वार।

१७४ धम्माणं कासवो मुहं।

—उत्तराध्ययन गा० १६

को दस प्रकार के धर्म का प्रवर्तक माना है।[१७५] भागवतकार ने उनका अवतार ही मोक्षधर्म का उपदेश देने के लिए माना है।[१७६]

भारतीय साहित्य में फाल्गुन कृष्णा एकादशी का दिन स्वर्णाक्षरों में उट्टङ्कित है जिस दिन सर्व प्रथम भगवान् का आध्यात्मिक प्रवचन भावुक भक्तों को श्रवण करने को प्राप्त हुआ।[१७७] भगवान् ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की गम्भीर मीमांसा करते हुए मानवजीवन के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा— जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है, राग नहीं, वैराग्य है, वासना नहीं साधना है। इस प्रकार भगवान् के अध्यात्म रस से छलछलाते हुए प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत के पाँचसौ पुत्र व सातसौ पौत्रों ने तथा 'ब्राह्मी' आदि ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[१७८]

इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दनेन महादेवेन ऋषभेण दश प्रकारो धर्मः स्वयमेव चीर्णः।

— ब्रह्माण्डपुराण

तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया।

— भागवत ११।२।१६।पृ० ७११

फग्गुणबहुले एक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेण।
उप्पन्नंमि अणंते महव्वया पंच पन्नवए॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४०

(ख) तत्थ समोसरणे भगवं सक्कादीणं धम्मं परिकहेति।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० १८२

१७८ सह मरुदेवीइ निग्गओ, कहणं पव्वज्ज उसभसेणस्स।
बंभीमरीइदिक्खा सुन्दरिओरोह सुअदिक्खा॥
पंच य पुत्तसयाइं भरहस्स य सत्त नत्तुअसयाइं।
सयराहं पव्वइआ तंमि कुमारा समोसरणे॥

—आवश्यक नि० गा० ३४४–३४५

सम्राट भरत आदि ने श्रावक वृत ग्रहण किये और सुन्दरी ने भी।[१७९]

महापुराणकार ने भरत के स्थान पर श्रावक का नाम श्रुतकीर्ति दिया है और सुन्दरी के स्थान पर श्राविका का नाम प्रियवता दिया है।[१] पर श्वेताम्बर ग्रन्थो म ये नाम कही पर भी नही आये है। इस प्रकार श्रमण श्रमणी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की संस्थापना कर वे सर्वप्रथम तीर्थङ्कर बने।

श्रमणो के लिए पाच महाव्रतो[१८१] का और गृहस्थो के लिए

(ख) तत्थ उसमसेणो णाम भरहस्स रन्नो पुत्तो सो धम्म सोऊण य बुद्धो तेण तिहि पुच्छाहि चाद्दसपुव्वाइ गहिताइ—उप्पन्न विगते धुव तत्थ बम्मीति पव्वइया।

—आवश्यक चूर्णि पृ १

(ग) महापुराण पर्व २८ श्लोक १७५ पृ ५६१

१७६ (क) भरहो सावओ सुन्दरीए ण दिन्न पव्वइउ मम इत्थिरयण एसत्ति सा साविगा एस चउव्विहो समणसघो।

—आवश्यक चूर्णि पृ १८२

(ख) भरहो सावगो जाओ सुन्दरी पव्वयन्ती भरहेण इत्थी भविस्सइत्ति निरुद्धा साविया जाया एस चउव्विहो समणसघ।

—आवश्यक मल वृ प २२६

१८ श्रुतकीर्तिर्महाप्राज्ञो गृहीतोपासकव्रत।
देशसयमिनामासीद्धौरेयो गृहमेधिनाम्॥
उपात्ताणुव्रता धीरा प्रयतात्मा प्रियव्रता।
स्त्रीणा विशुद्धवृत्तीना बभूवाग्र सरी सती॥

—महापुराण जिनसेन २४।१७७–१७८ पृ ५६२

१८१ अहिससच्च च अतेणग च
तत्तो य बम्भ च अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पच महव्वयाइ
चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विऊ॥

—उत्तराध्ययन २१।२२

वे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक अवतार है।[९१] जैन साहित्य में जिस ऋषभसेन को ज्येष्ठ गणधर कहा है, सम्भव है, वैदिक साहित्य मे उसे ही मानसपुत्र और ज्येष्ठपुत्र अथर्वन कहा हो। उन्हे ही भगवान् ने समस्त विद्याओ मे प्रधान ब्रह्मविद्या देकर लोक मे अपना उत्तराधिकारी बनाया है।[९२]

आद्य परिव्राजक मरीचि

भगवान् के केवल ज्ञान की तथा तीर्थ-प्रवर्तन की सूचना प्राप्त होते ही, भगवान् के साथ जिन चार सहस्र व्यक्तियो ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी और जो क्षुधा पिपासा से पीडित होकर तापस आदि हो गये थे, उन तापसो मे से कच्छ महाकच्छ को छोडकर सभी भगवान् के पास आते है और आर्हती प्रव्रज्या ग्रहण करते है।[९३]

---

९१ तमाहुर्वासुदेवाश मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्ण सुतशत तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२।१६ गीता प्रेस० गो० प्र० सस्करण

९२ ब्रह्मा देवाना प्रथम सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्या सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।

—मुण्डकोपनिषद् १।१

(ख) स्वर्तितनयाय गात विदद ।

—ऋग्वेद १, ६६, ४

९३ ते य तापसा भगवओ नाणमुप्पण्ण ति कच्छसुकच्छवज्जा भगवओ सगासमागतूण भवणवतिवाणमतरजोइसियवेमाणियदेवाण्णिगण परिस दट्ठूण भगवओ सगासे पव्वइया ।

—आव० नि० मल० वृ० पृ० २३०।१

(ख) ते च कच्छमहाकच्छवर्ज राजन्यतापसा ।
आगत्य स्वामिन पार्श्वे, दीक्षामाददिरे मुदा ॥

त्रिषष्टि १।३।६५४ पृ० ८६

आवश्यकनिर्युक्ति आवश्यक चूर्णि आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति [१९५] आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति [१९६] त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र [१९७] कल्पलता [१९८] कल्पद्रुम कलिका [१९९] महावीरचरियं [२] प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार भगवान् के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत का पुत्र मरीचि भगवान ऋषभदेव के पास दीक्षित होता

(ग) मऽपि च तापसा कच्छ-
महाकच्छविवर्जिता ।
तेऽपि प्रपन्नि दीक्षा
समेत्य स्वामिनोऽन्तिक ॥
—कल्पार्थ बोधिनी पृ० १५१

१९४ दट्ठूण कीरमाणं महिमं देवेहिं खत्तिओ मरिई ।
सम्मत्तलद्धबुद्धी धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥
—आव नि गा० ४७

१९५ एत्थ समोसरणे मरिचिमाइया बहव कुमारा पव्वइया
—आवश्यक मल वृ पृ २ ।१

१९६ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति

१९७ आद्य समवसरणे ऋषभस्वामिन प्रभो ।
पितृभ्रात्रादिभि साध मरीचि क्षत्रियो ययौ ॥
महिमान प्रभो प्रेक्ष्य क्रियमाण स नाकिभि ।
धर्म आकर्ण्य सम्यक् [illegible] व्रतमादद ॥
—[illegible]

१९८ तत्र भरतस्य मरीचिप्र[illegible] [illegible]
सप्तशतपौत्राश्च प्रति[illegible] ।

१९९ तत्र प्रथमदेशनायां धर्म
पौत्रा
[illegible] मरीचि

है, तप सयम की विशुद्ध आराधना-साधना करता हुआ[201] एकादश अङ्गों का अध्ययन करता है।[202] पर एक वार वह भीष्म-ग्रीष्म के आतप से प्रताडित होकर साधना के कठोर कटकाकीर्ण महामार्ग से विचलित हो जाता है।[203] उसके अन्तर्मानस मे ये विचार-लहरियाँ तरगित होती है कि मेरुपर्वत सदृश यह सयम का महान् भार मैं एक मुहूर्त भी सहन करने मे असमर्थ हूँ।[204] क्या मुझे पुन गृहस्थाश्रम स्वीकार करना चाहिए ? नही, कदापि नही। और मैं सयम का भी विशुद्धता से पालन नही कर पाता, अत मुझे नवीन वेषभूषा का निर्माण करना चाहिए।[205]

श्रमणसस्कृति के श्रमण त्रिदण्ड-मन वचन काय के अशुभ व्यापारो से रहित होते हैं, इन्द्रियविजेता होते है, पर तो मैं त्रिदण्ड से युक्त हूँ, और अजितेन्द्रिय हूँ, अत इसके प्रतीक रूप त्रिदण्ड को धारण करूँगा।[206]

---

२०१ मरिईवि सामिपासे विहरइ तवसजममग्गो ।

—आवश्यक भाष्य, गा० ३६

२०२ सामाइअमाईअ इक्कारसमा उ जाव अगाओ ।
उज्जुत्तो भत्तिगओ अहिज्जिओ सो गुरुसगासे ॥

—आवश्यक भाष्य० गा० ३७

२०३ अह अन्नया कयाइ गिम्हे उण्हेण परिगयसरीरो ।
अण्हाणएण चइओ इम कुलिंग विचिंतेइ ॥

—आव० नि० गा० ३५० मल० वृ० प० २३३।१

२०४ मेरुगिरीसमभारे न हु वि समत्थो मुहुत्तमवि वोढु ।
सामन्नए गुणे गुणरहिओ ससारमणुकखी ॥

—आव० नि० गा० ३५१ म० वृ० २३३।१

२०५ एवमणुचितयतस्स तस्स निअगा मई समुप्पन्ना ।
लद्धो मए उवाओ जाया मे सासया बुद्धी ॥

—आव० नि० गा० ३५२

२०६ समणा तिदडविरया भगवतो निहुअसकुइअगा ।
अजिइदिअदडस्स उ होउ तिदड मह चिध ॥

—आव० नि० गा० ३५३ मल० प० २३३

श्रमण द्रव्य और भाव से मुण्डित होते है सब प्राणातिपात विरमण महाव्रत के धारक होते है पर मै शिखासहित क्षुरमुण्डन कराऊगा और स्थूलप्राणातिपात का विरमण करूगा।[२७]

श्रमण अकिंचन तथा शील की सौरभ से सुरभित होते है पर म परिग्रहधारी रहूँगा और शील की सौरभ के अभाव मे चन्दनादि की सुगन्ध से सुगन्धित रहूंगा।[२८]

श्रमण निर्मोह होते है पर मै मोह ममता के मरुस्थल मे घूम रहा हूँ उसके प्रतीक के रूप म छत्र धारण करूगा। श्रमण नंगे पर होते है पर म उपानद् पहनूगा।[२९]

श्रमण जो स्थविर कल्पी है वे श्वेतवस्त्र के धारक है और जिन कल्पी निवस्त्र होते है पर मैं कषाय से कलुषित हूँ अत काषाय वस्त्र धारण करुगा।[२१]

(ख) त्रिषष्ठि १।६।१५ प १५

२७ लोइ दियमुडा सजया उ अहय खुरेण ससिहा य।
थूलगपाणिवहाओ वेरमण मे सया होउ ॥
—आव नि गा ३५४ म० वृ २३३।

(ख) अमी मुण्डा शिर केशलुञ्चनेन्द्रियनिर्जय।
अह पुनर्मुण्डयिष्यामि क्षुरमुण्डशिखाधर ॥
त्रिषष्ठि १।६।१६। प १५

२८ निक्किचणा य समणा अकिचणा मज्झ किचण होउ।
सीलसुगधा समणा अहय सीलेण दुग्गधो ॥
—आव नियुक्ति गा ३५५

(ख) त्रिषष्ठि १।६।१६।१५ ।१

२९ ववगयमोहा समणा मोहाछन्नस्स छत्तय होउ।
अणुवाणहा य समणा मज्झ तु उवाहणो हुतु ॥
—आव नियुक्ति गा० ३५६

(ख) त्रिषष्ठि १।६।२ ।१५ ।१

२१ सुक्कबरा य समणा निरबरा मज्झ धाउरत्ताइ।
हुतु इमे वत्था अरिहो मि कसायकलुसमई ॥
—आवश्यक नियुक्ति गा १५७

श्रमण पापभीरु और जीवों की घात करने वाले आरम्भादि से मुक्त होते हैं। वे सचित्त जल का प्रयोग नहीं करते हैं। पर मैं ऐसा नहीं हूँ, अतः स्नान तथा पीने के लिए परिमित जल ग्रहण करूँगा।"[11]

इस प्रकार उसने अपनी कल्पना से परिकल्पित परिव्राजक-परिधान का निर्माण किया[14] और भगवान् के साथ ही ग्राम नगर आदि में विचरने लगा।[15] भगवान् के श्रमणों में मरीचि की पृथक् वेश-भूषा को निहारकर जन-जन के अन्तर्मानस में कुतूहल उत्पन्न होता। लोग जिज्ञासु बनकर उसके पास पहुँचते।[16] मरीचि अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा की तेजस्विता से प्रतिबोध देकर उन्हें भगवान् के शिष्य बनाता।[17]

एक समय सम्राट् भरत ने भगवान् श्री ऋषभदेव के समक्ष

(ग) त्रिषष्टि० १।६।२११।१७०।१

२११ छत्तऽऽच्छत्तभीरु, उज्जीवनमाउल जलारम।
गाउ मम परिमिणा, जनेण पण्हाणा व पिअणा व ॥
—आवश्यक नि० गा० ३५८

(ग) त्रिषष्टि० १।६।२२।१७०।१।

२१२ तव सा मरुयगई निअगमइविगप्पिय इम लिंग।
—आव० नि० गा० ३५६

(ख) स्वबुद्धया कल्पयित्वैवं मरीचिर्लिङ्गमात्मन।
—त्रिषष्टि १।६।२३।१७१।१

२१३ सागमयणागर्दि, विहरइ सो सामिणा सद्धि।
—आवश्यक नियुक्ति ३६० प० २३८

२१४ अह त पागडरूव दट्ठु पुच्छेइ बहुजणा धम्म।
कहइ जईण तो सो विआलणे तस्स परिकहणा॥
—आवश्यक नियुक्ति गा० ३८८

२१५. धम्मकहाअक्खित्ते उवट्ठिए देइ भगवओ सीस।
—आवश्यक नियुक्ति ३६०

जिज्ञासा प्रस्तुत की—कि प्रभो! क्या इस परिषद् में ऐसा कोई व्यक्ति है जो आपके सदृश ही भरत क्षेत्र में तीर्थंकर बनेगा?[२१६]

जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—स्वाध्याय ध्यान से आत्मा को ध्याता हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक वीर नामक अन्तिम तीर्थङ्कर बनेगा। उससे पूर्व वह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ठ वासुदेव होगा तथा विदेह क्षेत्र की मूका नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा। इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियों को वह अकेला ही प्राप्त करेगा।[२१७]

---

२१६ पुणरवि अ समोसरणे पुच्छीअ जिणं तु चक्किणो भरहे।
अप्पुट्ठो अ दसारे तित्थयरो को इह भरहे?॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३६७

(ख) अह भणइ नरवरिंदो ताय! इमीसित्तिआइ परिसाए।
अन्नोऽवि कोऽवि होही भरहे वासम्मि तित्थयरो?
—आवश्यक मूलभाष्य गा० ४४ मल० वृ० पृ० २४३

(ग) भयवं! किमेत्थ कोऽवि हु पाविस्सइ तित्थयरलाभं?
—महावीर चरियं गुणचन्द्र गा० १२४ प्र० २ प० १८

२१७ तत्थ मरीई नामा आइपरिव्वायगो उसभनत्ता।
सज्झायज्झाणजुओ एगंते झायइ महप्पा॥
तं दाएइ जिणिन्दो एव नरिंदेण पुच्छिओ संतो।
धम्मवरचक्कवट्टी अपच्छिमो वीरनामुत्ति॥
तथा—आइगरु दसाराणं तिविट्ठु नामेण पोअणाहिवई।
पियमित्तचक्कवट्टी मूआइ विदेहवासम्मि॥
—आवश्यक नि० गा० ४२२ से ४२४ प० २४४

(ख) ताहे कलियकुलिंग सिरिइ एगसठिय भयवं।
दावइ जह एस जिणो चरिमो होही तुह सुओत्ति॥
एगोच्चिय गामागरनगरसमिद्धस्स भारहद्धस्स।
सामी तिविट्ठुनामो पढमो तह वासुदेवाणं॥
एसो महाविदेहे पियमित्तो नाम चक्कवट्टीवि।
मूयाए नयरीए भविस्सई परमरिद्धिजुओ।
—महावीर चरियं गा० १२६ से १२८ प० १८॥

भगवान् श्री ऋषभदेव की भविष्य वाणी को श्रवण कर सम्राट् भरत भगवान् को वन्दन कर मरीचि परिव्राजक के पास पहुँचे, और भगवान् की भविष्यवाणी को सुनाते हुए उससे कहा—अयि मरीचि परिव्राजक ! तुम अन्तिम तीर्थङ्कर बनोगे, अतः मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।[२१८] तुम वासुदेव व चक्रवर्ती भी बनोगे।"

यह सुनकर मरीचि के हृत्तन्त्री के तार झनझना उठे—मैं वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर बनूँगा।[२१९] मेरे पिता चक्रवर्ती है, मेरे पितामह तीर्थङ्कर है और मैं अकेला ही तीन पदवियो को धारण करूँगा।[२२०] मेरा कुल कितना उत्तम है !

एक दिन मरीचि का स्वास्थ्य बिगड गया। सेवा करने वाले के अभाव मे मरीचि के मानस मे ये विचार उद्बुद्ध हुए कि मैंने अनेको को उपदेश देकर भगवान् के शिष्य बनाये, पर आज मैं स्वयं सेवा करने वाले से वचित हूँ। अब स्वस्थ होने पर मैं स्वयं अपना शिष्य

(ग) त्रिषष्टि १।६।३७२ से ३७८ पृ० १६२।

२१८ नावि ज ते पारिवज्ज वदामि अह इम च ते जम्म।
ज होहिसि तित्थयरो अपच्छिमो तेण वदामि ॥

—आव० नि० गा० ४२८ प० २४४

(ख) महावीर चरियं गा० १२६ से १३६ प० १६।

२१९ जइ वासुदेव पढमो मूआइ विदेह चक्कवट्टित्त।
चरिमो तित्थयराण होउ अल इत्तिय मज्झ ॥

—आव० नि० गा० ४३१ प० २४५

२२० अहय च दसाराण पिया मे चक्कवट्टिवसस्स।
अज्जो तित्थयराण अहो कुल उत्तम मज्झ ॥

—आव० नि० गा० ४३२।२४५

(ग) यथाद्यो वासुदेवाना विदेहेषु च चक्रभृत्।
अन्त्योऽर्हन् भवितास्मीति पूर्णमेतावता मम ॥
पितामहोऽर्हतामाद्यश्चक्रिणा च पिता मम।
दशार्हाणामह चेति श्रेष्ठ कुलमहो मम ॥

—त्रिषष्टि० १।६।३८६–३८७

वनाऊँगा।[२२१] वह स्वस्थ हुआ। कपिल राजकुमार धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया। उसने आर्हती दीक्षा की प्रेरणा दी। कपिल ने प्रश्न किया आप स्वयं आर्हत धर्म का पालन क्यों नहीं करते?' उत्तर में मरीचि ने कहा-- मैं उसे पालन करने में समर्थ नहीं हूँ। कपिल ने पुन प्रश्न किया--क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं उसमें धर्म नहीं है इस प्रश्न ने मरीचि के मानस में तूफान पैदा कर दिया और उसने कहा-- यहाँ पर भी वही है जो जिन धर्म में है।[२२२] कपिल उसी का शिष्य बना।

---

२२१ अन्यदा स ग्लान संवृत्त साधवोऽप्यसंयतत्वान्न प्रतिजाग्रति। स चिन्तयति--निष्ठितार्था खल्वेते नासंयतस्य कुर्वन्ति नापि ममनान् कारयितु युज्यते तस्मात्कंचन प्रतिजागरकं दीक्षयामीति।

—आव मल वृ प २४७।१

(ख) त्रिषष्ठि १।६।२६-३२ पृ १२।

(ग) महावीर चरियं गुण ६।२६-३२

२२२ अपगतरोगस्य च कपिलो नाम राजपुत्रो धम्मशुश्रुषया तदन्तिकमागत इति कथिते साधुधर्म्मे स आह--यद्यय मार्ग किमिति भवतातदङ्गीकृत? मरीचिरा०--पापोऽहं लोए इ दिये त्यादि विभाषा पूर्ववत् कपिलोऽपि कर्मोदयात् साधुधर्मानभिमुख खल्वाह--तथापि किं भवद्दर्शने नास्त्येव धर्म्म इति? मरीचिरपि प्रचुरकर्म्मा स्वयं न तीर्थकरोक्त प्रतिपन्ने वर मे सहाय संवृत्त इति सञ्चिन्त्याह-- कपिला एत्थ पि त्ति।

—आवश्यक नियुक्ति मलय वृ प० २४७।१

(ख) मरीचिमाययौ भूय स इयूचं च किं तव?
योऽपि सोऽपि न धर्मोऽस्ति निर्धर्म किं व्रत भवेत्?

—त्रिषष्ठि १।६।४८

(ग) कविलेण वुत्त--भयव! तुम्ह सतिए एत्थ तहावि अत्थि किं पि णिज्जराठाए न वा! मिरिइणा भणियं--भद्द! समणधम्मे ताव अत्थि इहावि मणाग ति।

—महावीर चरियं गुण प २२

दिगम्बराचार्य जिनसेन और आचार्य सकलकीर्ति के मन्तव्यानुसार जिन चार सहस्र राजाओं ने भगवान् के साथ दीक्षा ग्रहण की थी, उनके साथ ही मरीचि ने भी दीक्षा ली थी।[२२३] और वह भी उन राजाओं के समान ही क्षुधा-पिपासा से व्याकुल होकर परिव्राजक हो गया था।[२२४] मरीचि के अतिरिक्त सभी परिव्राजकों के आराध्यदेव श्री ऋषभदेव ही थे।[२२५] भगवान् को केवल ज्ञान होने पर मरीचि को छोड़कर अन्य सभी भ्रष्ट बने हुए साधक तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझकर पुनः दीक्षित बने।[२२६]

जैन साहित्य की दृष्टि से मरीचि 'आदि परिव्राजक' था।[२२७]

(ख) सेसाणोवट्ठियाणं ओमरा । उवट्ठाण उवट्ठाणं ।

—आवश्यक नि० गा० ८२७

२२३ (क) सर्वपितामहसन्त्यागे प्रव्रज्या गुरुभक्तितः ।
राजभिः सह कच्छाद्यैः परित्यक्तपरिग्रहः ॥

—उत्तरपुराण, श्लो० ७२ स० ७४, पृ० ४४६

(ख) महावीर पुराण—आचार्य सकलकीर्ति पृ० ६ ।

२२४ मरीचिश्च गुरोर्नप्ता, परिव्राड्भूयमास्थितः ।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोद् अपसिद्धान्तभाषितैः ॥

—महापुराण जिन० प० १८, श्लो० ६१ पृ० ४०३

२२५ न दयतान्तर तेषाम् आसीन्मुक्त्वा स्वयम्भुवम् ।

—महा० जिन० १८।६०।४०२

२२६. मरीचिवर्ज्याः सर्वेऽपि तापसास्तपसि स्थिताः ।
भट्टारकान्ते सम्बुद्ध्य महाप्राव्राज्यमास्थिताः ॥

—महापुराण जिन० २४।१८२।५६२

२२७. आद्यस्तु भगवानेव, य एष तव नन्दनः ।
मरीचिर्नामधेयेन परिव्राजक आदिमः ॥

—त्रिषष्टि० १।६।३७३

(ख) अदीक्षयत् स कपिलं, स्वागताय प्रकारं च ।
परिव्राजकपाखण्डं, तत् प्रभृति चाऽभवत् ॥

—त्रिषष्टि० १।६।५२

कपिल जैसे शिष्य को प्राप्तकर उसका उत्साह बढ गया। उसने तथा उसके शिष्य कपिल ने योगशास्त्र और साख्य शास्त्र का प्रवतन किया।

मरीचि और कपिल का वर्णन जैसा जन साहित्य मे उट्टङ्कित है वसा भागवत आदि वदिक साहित्य म नही। जहाँ जन साहित्य में मरीचि को भरत का पुत्र माना है वहा भागवतकार ने भरत की वश परम्परा का वर्णन करते हुए उसे अनेक पीढियो के पश्चात् सम्राट् का पुत्र बताया है तथा उसकी माँ का नाम उत्कला दिया है।[२९]

जन साहित्य म कपिल को राजपुत्र बनाया है और वदिक साहित्य म उसे कदम ऋषि का पुत्र बताया है। साथ ही उन्हे विष्णु का पाँचवा अवतार भी माना है।[२३]

जब कपिल कदम ऋषि के यहाँ जन्म ग्रहण करता है तब ब्रह्मा जी मरीचि आदि मुनियो के साथ कदम के आश्रम म

---

२२८ (क) स प्राज्ञ्मावधर्मात्वा मोहादम्येत्य भूतल।
स्वय कृत साख्यमतमासूर्यादीनबोधयत् ॥
तदाम्नायादत्र साख्य प्रावर्तत च दशनम्।
सुखसाध्ये ह्यनुष्ठाने प्रायो लोक प्रवर्तते ॥
त्रिषष्टि १।१।७३–७४

(ख) तदुपज्ञमभूद्‌ योगशास्त्र तन्त्र च कापिलम्।
येनाय मोहितो लोक सम्यग्ज्ञानपराङ्मुख ॥
—महापुराण १८।६२।४३

२२९ तत उत्कलाया मरीचिर्मरीचर्बिन्दु ।
—भागवत ५।१५।१५।६ ६

२३ पचम कपिलो नाम सिद्धेश कालविप्लुतम्।
प्रोवाचासुरय साख्य तत्वग्रामविनिर्णयम् ॥
—भागवत स्कन्ध १ अ ३ श्लो १ पृ ५६

पहुँचते है[२३१] और यह प्रेरणा देते है कि वे अपनी कन्याएँ मरीचि आदि मुनियो को समर्पित करे।[२३२] ब्रह्मा की प्रेरणा से कर्दम ऋषि ने 'कला' नामक कन्या का मरीचि के साथ पाणिग्रहण करवाया।[२३३] इस प्रकार स्पष्ट है कि मरीचि कपिल के बहनोई थे। पर प्रश्न है कि भागवतकार ने एक ओर ऋषभ को आठवाँ अवतार माना है और कपिल को पाँचवाँ और कपिल तथा मरीचि का समय एक ही बताया गया है। श्रीमद्‌भागवत की दृष्टि से मरीचि भरत की अनेक पीढियो के बाद आते है तो पूर्व मे होने वाले को आठवाँ अवतार और पश्चात् होने वाले को पाँचवाँ अवतार कैसे माना गया ?

हमारी दृष्टि से भागवत मे अवतारो का जो निरूपण किया गया है, वह न क्रमबद्ध है और न सगत ही है।

जैन-साहित्य मे मरीचि परिव्राजक के आचारशैथिल्य का वर्णन तो है, पर भागवत की तरह उनके विवाह का उल्लेख नही है।

वैदिक साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि मरीचि श्री ऋषभ के अनुयायी थे। ऋग्वेद[२३४] मे काश्यपगोत्री

---

२३१ तत्कर्दमाश्रमपद सरस्वत्या परिश्रितम् ।
स्वयम्भू साकमृषिभिर्मरीच्यादि रम्ययात् ।।
श्रीमद्‌भागवत स्कन्ध ३, अ० २८, श्लो० ६ पृ० ३१५

२३२ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशील यथारुचि ।
आत्मजा परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ।।
—भागवत ३।२४।१५।३१६

२३३ गते शतधृती क्षत्त कर्दमस्तेन चोदित ।
यथोदित स्वदुहित प्रादाद्विश्वसृजा तत ।।
मरीचये कला प्रादादनसूयामथात्रये ।
श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ।।
—भागवत ३।२४।२१-२२।३१७

२३४ ऋग्वेद ११६

मरीचिपुत्र ने अग्निदेव के प्रतीक के रूप मे जो ऋषभदेव की स्तुति की है वह हमारे मन्तव्यानुसार वही मरीचि है जिनका प्रस्तुत इतिवृत्त से सम्बन्ध है।

सुन्दरी का सयम

भगवान् श्री ऋषभ के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर ही सुन्दरी सयम ग्रहण करना चाहती थी। उसने यह भव्य भावना अभिव्यक्त भी की थी किन्तु सम्राट भरत के द्वारा आज्ञा प्राप्त न होने से वह श्राविका बनी।[२३५] परन्तु उसके अन्तर्मानस मे वैराग्य का पयोधि उछाले मार रहा था वह तन से गृहस्थाश्रम म थी किन्तु उसका मन सयम म रम रहा था। षट् खण्ड पर विजय वजयन्ती फहराकर और सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक अखण्ड शासन प्रदान कर जब सम्राट भरत दीर्घकाल के पश्चात् विनीता लौटे तब सुन्दरी के कृश तनु को देखकर वे चकित रह गये।[२३६]

---

२३५ सुन्दरी पव्वयती भरहेण इत्थीरयण भविस्सईत्ति निरुद्धा साविया जाया।

—आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति पृ २२६

(ख) विमुक्ता बाहुबलिना जिघृक्षु सुन्दरी व्रतम्।
भरतेन निषिद्धा तु, श्राविका प्रथमाऽभवत ॥

—त्रिषष्ठि प १। स ३। प ६५१

(ग) कल्प सुबोधिका टीका पृ ५१२ सारा न।

(घ) कल्पलता—समय सुन्दर पृ २०७।

(ङ) कल्पद्रुम कलिका पृ १५१।

२३६ एव जाहे बारस वरिसाणि महारायाभिसेगो वत्तो रायाणो विसज्जिता ताहे णियगवग्ग सारिउमारद्धो ताहे दाइज्जति सव्वे णियलगा एव परिवाडिए सुन्दरी दाइता सा पडुलुइत्ता सा य जद्दिवस रुद्धा चेव तद्दिवसमारब्भ चेव आयबिलाणि त पारिता रट्ठो ते कोइ बियें भणति।

—आवश्यक चूर्णि

सम्राट् भरत ने सुन्दरी से पूछा—सुन्दरी तुम सयम लना चाहती हो या गृहस्थाश्रम म रहना चाहती हो ? सुन्दरी ने सयम की भावना अभिव्यक्त की। सम्राट भरत की आज्ञा से सुदरी ने श्री ऋषभदेव की आज्ञानुवर्तिनी ब्राह्मी के पास दीक्षा ली।[२१] प्रस्तुत प्रसग पर सहज ही ऋग्वेद के यमी सूक्त की स्मृति हो आती है। भाई यम से भगिनी यमी ने वरण करने की अभ्यर्थना की पर भ्राता यम भगिनी की बात को स्वीकारता नही है। जबकि यहाँ भ्राता की अभ्यर्थना बहन ठुकराती है।+

आचार्य जिनसेन के अभिमतानुसार सुन्दरी ने प्रथम प्रवचन को श्रवण कर ब्राह्मी के साथ ही दीक्षा ग्रहण की थी।[२]

अठानवें भ्राताओं की दीक्षा

यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव अपने सौ पुत्रो को पृथक् पृथक राज्य देकर श्रमण बने थे। सम्राट् भरत चक्रवर्ती बनना चाहते

तथा यदेव देवन प्र शन्ती न्यपिध्यत।
तत प्रभृत्यमो तस्यौ व्रत सयनव हि॥
—त्रिषष्टि १।४।७४५–७४६

(ख) तेहि सिट्ठ जहा अ विनण पारेति ताहे तस्स पयणुरागो जाओ।
—आवश्यक चूर्णि पृ २ ६

२ ६ भणति-जदि तात भजसि त पु पव्वयतु अह भोगट्ठी ता अच्छतु ताहे पाम्सु पडिता विसजिता पव्वइया।
—आवश्यकचूर्णि पृ २ ६

(ख) सा य भणिया जइ ब ज नि तो मए सम भोग भु जाहि ण वि तो पव्वयाहित्ति। ताहे पाएसु पडिया विसजिया पव्वइया।
—आवश्यक सूत्र मल वृत्ति पृ २३१।१

+ दर्शन अने चिन्तन भ ऋषभदेव अने तेमना परिवार
—पृ २३६ २ ७ प सुखलालजी

२४ सुन्दरी चात्तनिर्वेदा ता ब्राह्मीमन्वदीक्षित।
—महापुराण पव २४ श्लो १७७ पृ ५९२

थे, अत षट्खण्ड को तो उन्होंने जीत लिया था, पर अभी तक अपने भ्राताओं को अपना आज्ञानुवर्ती नहीं बना पाये थे, एतदर्थ अपने लघु भ्राताओं को अपने अधीन करने के लिए उन्होंने दूत प्रेषित किये।[241] अट्ठानवे भ्राताओं ने मिलकर इस विषय में परस्पर परामर्श किया, परन्तु वे निर्णय पर नहीं पहुँच सके।[242] उस समय भगवान् श्री ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर विचर रहे थे। वे सभी भगवान् के पास पहुँचे।[243] स्थिति का परिचय कराते हुए नम्र निवेदन किया—प्रभो !

---

२४१ अहवा भरहो तेसिं भाउगाण पत्थवेति, जहा मम रज्ज आयाणह,

—आवश्यकचूर्णि, पृ० २०९

(ख) अण्णया भरहो तेसिं भाउयाण दूय पट्ठवेइ, जहा-मम रज्ज आयाणह,

—आवश्यक मल०, २३१।१

(ग) प्राहिणोत्स निसृष्टार्थान् दूताननुजसन्निधिम् ।

—महापुराण जिन० ३४।८९।१७६

२४२ ते भणंति-अम्हवि रज्ज ताएण दिण्णं, तुब्भवि, एतु ताव ताओ पुच्छिज्जिहिति, ज भणिहिति त करीहामो,

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० २३१।१

(ख) ते भणंति-अम्हवि रज्ज ताएहिं दिन्न तुब्भवि, एतु ता ताओ ताए पुच्छिज्जिहिति, ज भणिहीति त काहामो ।

—आवश्यकचूर्णि, पृ० २०९

(ग) प्रत्यक्षो गुरुरस्माकं प्रतपत्यव विश्वदृक् ।
स नः प्रमाणमैश्वर्यं तद्दत्तोऽस्त्विदं हि नः ॥
तदत्र गुरुनादेशाः स्वतन्त्रा न स्वैरिणो वयम् ।
न देयं भरतेशेन नादेयमिह किञ्चन ॥

—महापुराण, जिन० ३४।९३–९४।१७६

२४३ आवश्यक चूर्णि पृ० २०९ ।

(ख) तेणं समएणं भयवं अट्ठावयमागओ विहरमाणो तत्थ सव्वे समोसरिया कुमारा ।

—आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० २३१।१

आपके द्वारा प्रदत्त राज्य पर भाई भरत ललचा रहा है। वह हम से राज्य छीनना चाहता है।[२४४] क्या बिना युद्ध किये हम उसे राज्य दे देवें ? यदि हम देते हैं तो उसकी साम्राज्य लिप्सा बढ जायेगी और हम पराधीनता के पंक मे डूब जायेगे। भगवन् ! क्या निवेदन करें ? भरतेश्वर को स्वयं के राज्य से सन्तोष नही हुआ तो उसने अन्य राज्यो को अपने अधीन किया किन्तु उसकी तृष्णा वडवाग्नि की तरह शान्त नही हो रही है। वह हमे आह्वान करता है कि या तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ। आपश्री के द्वारा दिये गये राज्य को हम क्लीब की तरह उसे कैसे अर्पित कर दें ? जिसे स्वाभिमान प्रिय नही है वही दूसरो की गुलामी करता है। और यदि हम राज्य के लिए अपने ज्येष्ठ भ्राता से युद्ध करते हैं तो भ्रातृ-युद्ध की एक अनुचित परम्परा का श्रीगणेश हो जाता है अतः आप ही बताए हमे क्या करना चाहिए ?[२४५]

(ग) ते दूतानभिधायैवं तं वाऽष्टापदाचलं ।
स्थितं समवसरणे वृषभस्वामिनं ययु ॥
—त्रिषष्ठि १।४।८८

२४४ ताहे भणति-तुब्भेहि दिण्णाति रज्जाइ हरति भाया।
—आव मल वृ पृ २३१।

(ख) तदानिं तातपादैर्नं सविभज्य पृथक्-पृथक्।
देशराज्यानि दत्तानि यथार्ह भरतस्य च ॥
तदेव राज्यं सन्तुष्टास्तिष्ठामो विष्टपेश्वर !।
विनीतानामलङ्घ्या हि मर्यादा स्वामिदर्शिता ॥
—त्रिषष्ठि १।४।८९-९२

२४५. (क) तो किं करेमो ? किं जुज्झामो उदाहु आयाणामो ?
—आवश्यक मल वृ पृ २३१

(ख) आवश्यकचूर्णि प २०६।

(ग) स्वदत्तान्येनान्यराज्यश्चापहृतर्भरतश्वर ।
न संतुष्यति भगवन् ! वडवाग्निरिवाऽम्बुभि ॥
आचिच्छेद यथाऽन्येषा राज्यानि पृथिवीभुजाम्।
अस्माकमपि भरतस्तद्वाच्छत्यमिच्छति ॥

सुखों से आध्यात्मिक सुख विशेष है।[२४७] इसे ग्रहण करो, इसमे न कायरता की आवश्यकता है और न युद्ध का ही प्रसग है।

सूख लकडहारे[२४८] का रूपक देते हुए भगवान् ने कहा—एक लकडहारा था वह भाग्यहीन और अज्ञ था। प्रतिदिन कोयले बनाने के लिए वह जगल मे जाता और जो कुछ भी प्राप्त होता उससे अपना भरण पोषण करता। एक बार वह भीष्म-ग्रीष्म की चिल चिलाती धूप मे थोडा-सा पानी लकर जगल मे गया। सूखी लकडियाँ एकत्रित की। कोयल बनाने के लिए उन लकडियो मे आग लगादी।

चिलचिलानी धूप प्रचण्ड ज्वाला तथा गम लू के कारण उसे अत्यधिक प्यास लगी। साथ म जो पानी लाया था वह पी गया पर प्यास शान्त न हुई। इधर उधर जगल मे पानी की अन्वेषणा की पर कही भी पानी उपलब्ध नही हुआ। सन्निकट कोई गाँव भी नही था प्यास से गला सूख रहा था घबराहट बढ रही थी। वह एक वृक्ष

---

२४७ भगवती १४ उद्० ६।

२४८ ताहे इ गालदाहगदिट्ठ त कहति जहा एगो इ गालदाहगा सो एग भायए पाणियस्स भरेऊण गतो त तण उदग णिट्ठवित उवरि आदिच्चो पासे अग्गी पुणो परिस्समो दारुगाणि कोट्टे तस्स घर गतो तत्थ पाणित पीतो एव अस भावपट्ठवणाए कूवतलागणदिदहसमुद्दा य सव्व पाता ण य तण्हा छिज्जति ताहे एगमि तच्छकुहितविरस पाणिए जुलकूवभिरिडे तणपूलित गहाय उस्सिचति ज पडितसेस त जीहाए लिहति से कैस ण। एव तब्भेहिवि अणतर सव्वट्ठ अणुत्तरा सव्वेऽवि सव्वलोए सद्दफरिसा अणुभूतपुव्वा तहवि तित्ति ण गता तो ण इमे माणुस्सए असुइए तुच्छे अप्पकालिए विरसे कामभोगे अभिलसह एव वयालीय णाम अज्झयण भासति सबुज्झह किन्न बुज्झह"

—आवश्यकचूर्णि जिनदास पृ २ ६-२१

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति।

के नीचे लेट गया, नींद आगई। उसने स्वप्न देखा कि वह घर पहुँच गया है। घर पर जितना भी पानी है, पी गया है, तथापि प्यास शान्त नहीं हुई। कुँए पर गया और वहाँ का सारा पानी पी गया। पर प्यास नहीं बुझी। नदी, नाले और द्रहो का पानी पीता हुआ समुद्र पर पहुँचा, समुद्र का सारा पानी पी लेने पर भी उसकी प्यास कम नहीं हुई। तब वह एक पानी से रहित जीर्ण कूप के पास पहुँचा। वहां पानी तो नहीं था, किन्तु भीगे हुए तिनको को देखकर मन ललचाया और उन तिनको को निचोड कर प्यास बुझाने का प्रयास कर रहा था कि नींद खुल गई। रूपक का उपसहार करते हुए भगवान् ने कहा—क्या पुत्रो! उन भीगे हुए तिनको से उस लकडहारे की प्यास शान्त हो सकती है? जबकि कुए, नदी, द्रह, तालाब और समुद्र के पानी से नहीं हुई थी!

पुत्रो ने एक स्वर से कहा—नहीं भगवन्! कदापि नहीं।

भगवान् ने उन्हे अपने अभिमत की ओर आकृष्ट करते हुए कहा—पुत्रो! राज्यश्री से तृष्णा को शात करने का प्रयास भी भीगे हुए तिनको को निचोडकर पीने से प्यास बुझाने के प्रयास के समान है। दीर्घकालीन अपार स्वर्गीय सुखो से भी जब तृष्णा शान्त नहीं हुई तो इस तुच्छ और अल्पकालीन राज्य से कैसे हो सकती है? अत सम्बोधि को प्राप्त करो। वस्तुत जब तक स्वराज्य नहीं मिलता तब तक परराज्य की कामना रहती है। स्वराज्य मिलने पर परराज्य का मोह नहीं रह जाता।

भगवान् ने उस समय अपने पुत्रो को वैराग्यवर्द्धक एव प्रभावजनक जो उपदेश दिया था, वह सूत्रकृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के द्वितीय 'वैतालीय' नामक अध्ययन मे उल्लिखित है। जिनदास महत्तर के उल्लेख मे स्पष्ट है कि यह अध्ययन भगवान् के उसी उपदेश के आधार पर प्रवृत्त हुआ है। उस उपदेश मे बतलाया गया है कि-'मानव को शीघ्र-से-शीघ्र प्रतिबोध लाभ करना चाहिए, क्योकि व्यतीत समय लौटकर नहीं आता और पुन मनुष्यभव सुलभ नहीं है। प्राप्त जीवन का भी कोई ठिकाना नहीं। बालक, वृद्ध यहाँ तक कि गर्भस्थ मनुष्य भी मृत्यु के शिकार हो

जाते है। जगत् का उत्कृष्ट-से उत्कृष्ट वभव भी मृत्यु का निवारण करने मे समथ नही है। यही कारण है कि देव दानव गंधव भूमिचर सरीसप राजा और बडे-बडे सेठ साहूकार भी दु ख के साथ अपने स्थान से च्युत होते देखे जाते है। ब धन से च्युत ताल फल के समान आयु के टूटने पर जीव मृत्यु को प्राप्त होते है इत्यादि।

वस्तुत यह सम्पूर्ण अध्ययन अतीव मार्मिक और विस्तृत है। मुमुक्षजनो के लिए मननीय है।

भागवतकार ने भी भगवान् के पुत्रोपदेश का वर्णन दिया है जिसका सार इस प्रकार है—पुत्रो ! मानवशरीर दु खमय विषयभोग प्राप्त करने के लिए नही है। ये भोग तो विष्टाभोजी कूकरघूकरादि को भी प्राप्त होते है अत इस शरीर से दिव्य तप करना चाहिए क्योकि इसी से परमात्मतत्व की प्राप्ति होती है।[२४]

प्रमाद के वश मानव कुकम करने को प्रवृत्त होता है। वह इन्द्रियो को तृप्त करने के लिए प्रवृत्ति करता है पर मैं उसे अच्छा नही समझता क्योकि उसी से दु ख प्राप्त होता है।[२५] जब तक आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नही होती तब तक स्वस्वरूप के दशन नही होते वह विकार और वासना के दलदल मे फँसा रहता है और उसी से बन्धन की प्राप्ति होती है।[२५१]

---

२४६ नाय देहो देहभाजा नृलोक
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजा ये।
तपो दिव्य पुत्रका येन सत्त्व
शुद्ध येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्य त्वनन्तम् ॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।१।५५६

२५ नून प्रमत्त कुरुते विकर्म
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय-
मसन्नपि क्लेशद आस देह ॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।४।५५६

२५१ पराभवस्तावदबोध-जातो
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।

इस प्रकार अविद्या के द्वारा आत्म-स्वरूप आच्छन्न होने से कर्मवासनाओं से वशीभूत बना हुआ चित्त मानव को फिर कर्म में प्रवृत्त करता है। अत जब तक मुझ परमात्मा में प्रीति नहीं होती तब तक देहबन्धन से मुक्ति नहीं मिलती।[२५२]

स्वार्थ में उन्मत्त बना जीव जब तक विवेकदृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियों की चेष्टाओं को अयथार्थ रूप में नहीं देखता है, तब तक आत्मस्वरूप विस्मृत होने से वह गृह आदि में ही आसक्त रहता है और विविध प्रकार के क्लेश उठाता है।[२५३]

इस प्रकार भगवान् की दिव्य देशना से राज्य-त्याग की बात को सुनकर वे सभी अवाक् रह गये, पर शीघ्र ही उन्होंने भगवान् के प्रशस्त पथप्रदर्शन का स्वागत किया। अठानवे ही भ्राताओं ने राज्य त्यागकर सयम ग्रहण किया।[२५४]

यावत्क्रियास्तावदिद मनो वै,
कर्मात्मक येन शरीरबन्ध ॥
—भागवत ५।५।५।५६०

२५२ एव मन कर्मवश प्रयुङ्क्ते,
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे,
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥
—भागवत ५।५।६।५६०

२५३. यदा न पश्यत्ययथा गुणेहा,
स्वार्थे प्रमत्त सहसा विपश्चित्।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञ ॥
—भागवत ५।५।७।५६०

२५४. (क) एव अट्ठाणउईए वित्तेहि अट्ठाणउई कुमारा पव्वइता।
—आवश्यक चूर्णि

(ख) एव अट्ठाणउईवित्तेहि अट्ठाणउई कुमारा पव्वइयत्ति।
—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

सम्राट् भरत को यह सूचना मिली तो वह दौड़ा-दौड़ा आया। भ्रातृ प्रेम से उसकी आँख गीली हो गई। पर उसकी गीली आँखे अठानवे भ्राताओं को पथ से विचलित नही कर सकी। भरत निराश होकर पुन घर लौट गया।[२५५-२६]

भरत और बाहुबली

भरत समग्र भारत मे यद्यपि एक शासनतन्त्र के द्वारा एक अखण्ड भारतीय संस्कृति की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील थे मगर दूसरो की स्वतन्त्रता को सीमित किये बिना उनका उद्देश्य पूरा नही हो सकता था। ६८ भाइयो के दीक्षित होने से यद्यपि उनका पथ निष्कण्टक बन गया था तथापि एक बड़ी बाधा अब भी उनके सामने थी। वह थी बाहुबली को अपना आज्ञानुवर्ती बनाना। इसके लिए उसने अब अपने लघु भ्राता बाहुबली को यह संदेश पहुँचाया

(ग) अम दानन्दनि स्य-दनिर्वाणप्राप्तिकारणम्।
वत्सा ! सयमराज्य तद् युज्यते वो विवेकिनाम्॥
तत्कालोत्पन्नसवेगवेगा भगवदन्तिके।
तेऽष्टानवतिरप्याशु प्रव्रज्या जगृहुस्तत॥
—त्रिषष्टि १।४।५८४-५८५ प० ११०

(घ) इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्य पर निर्वेदमागता।
महाप्राव्राज्यमास्थाय निष्क्रान्तास्ते गृहाद्वनम्॥
—महापुराण ३४।१२५।१६२

२५५-२५६ आणवण भाउआण समुसरणे पुच्छ दिट्ठन्तो।
—आव नि गा ३४८

(ख) जदि भातरो म इच्छति तो भोग देमि भगव च आगतो ताहे भाइए भोगहि निमतेति ते ण इच्छति वत असितु।
—आवश्यक चूर्णि पृ २१२

(ग) भरतोऽपि भ्रातृप्रव्रज्यावृत्तान्तम् सञ्जातमनस्तापोऽधृति चक्रे कदाचिद्भोगादीन् दीयमानान् पुनरपि गृह्णन्तीत्यालोच्य भगवत्समीप चागम्य निमन्त्रयच्च तान्।
—आवश्यक मल वृ प २३५

(घ) त्रिषष्टि १।६।११ -१६६

कि वह अधीनता स्वीकार करले। ज्योंही भरत का यह सन्देश सुना, त्योंही बाहुबली की भृकुटि तन गई। उपशान्त क्रोध उभर आया। दाँतो को पीसते हुए उसने कहा—"क्या भाई भरत की भूख अभी तक शान्त नहीं हुई है? अपने लघु भ्राताओं के राज्य को छीन करके भी उसे सन्तोष नहीं हुआ है। क्या वह मेरे राज्य को भी हडपना चाहता है। यदि वह यह समझता है कि मै शक्तिशाली हूँ और शक्ति मे सभी को चट कर जाऊँगा तो यह शक्ति का सदुपयोग नहीं, दुरुपयोग है। मानवता का भयङ्कर अपमान है और व्यवस्था का अतिक्रमण है। हमारे पूज्य पिता व्यवस्था के निर्माता हैं और हम उनके पुत्र होकर व्यवस्था को भङ्ग करते हैं। यह हमारे लिए उचित नहीं है। बाहु-बल की दृष्टि से मैं भरत से किसी प्रकार कम नहीं हूँ। यदि वह अपने बडप्पन को विस्मृत कर अनुचित व्यवहार करता है तो मै चुप्पी नहीं साध सकता। मै दिखा दूंगा भरत को कि आक्रमण करना कितना अनुचित है। जब तक वह मुझे नहीं जीतता तब तक विजेता नहीं है।[२५७]

भरत विराट् सेना लेकर बाहुबली से युद्ध करने के लिए "बहली देश" की सीमा पर पहुँच गये। बाहुबली भी अपनी छोटी सेना सजाकर युद्ध के मैदान मे आगया। बाहुबली के वीर सैनिको ने भरत की

---

२५७ जाहे ते सव्वे पव्वइता ताहे भरहेण बाहुबलिस्स पत्थवित, ताहे सो ते पव्वइते सोऊण आसुरत्तो भणति—ते बाला तुमे पव्वाविता, अह पुण जुद्धसमत्थो। कि वा ममंमि अजिते तुमे जित ति? ता एहि अह वा राया तुम वा।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० २१०

(ख) कुमारेसु पव्वइएसु भरहेण बाहुबलिणो दूओ पेसिओ, सो ते पव्वइए सोउं आसुरुत्तो, ते बाला तुमए पव्वाविया।

—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

हृत्वाऽनुजाना राज्यानि, नूनमेष न लज्जित।
जितकाशी राज्यकृते, मामप्याह्वयते यत ॥

—त्रिषष्टि० १।५।४६७

विराट् सेना के छक्के छुडा दिये। लम्बे समय तक युद्ध चलता रहा, पर न भरत ही जीते और न बाहुबली ही। अन्त मे बाहुबली के कहने पर निर्णय किया कि व्यर्थ ही मानवो का रक्तपात करना अनुचित है क्यो न हम दोनो मिलकर युद्ध करलें।[२५८]

दिगम्बराचार्य जिनसेन ने दोनो भाइयो के जलयुद्ध दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध इन तीन युद्धो का निरूपण किया है।[२५९]

आचार्य जिनदास गणिमहत्तर ने दृष्टि युद्ध वाग् युद्ध बाहु युद्ध और मुष्टि युद्ध का प्ररूपण किया है।[२६]

उपाध्याय श्री विनय विजय जी ने दृष्टि युद्ध वाग् युद्ध, मुष्टि युद्ध दण्ड युद्ध इन चार युद्धो का निर्देश किया है।[२६१]

आवश्यक भाष्यकार,[२२] तथा आचार्य हेमचन्द्र[२६३] व

२५८　ताहे ते सव्वबलेण दावि देसते मिलिया ताहे बाहुबलिणा भणित— कि अणवराहिणा लोगण मारिएण ? तुम अह च दुयगा जुज्झामो एव होउत्ति।

—आवश्यक चूर्णि पृ　२१

२५९　जलदृष्टिनियुद्ध पु　　योऽनयोर्जयमाप्स्यति।
स जयश्रीविलासिन्या　पतिरस्तु स्वयवृत ॥

—महापुराण ३३।४५।२ ४। द्वि भा

२६　तेसि पढम दिट्ठिजुद्ध जात तत्थ भरहो पराजितो। पच्छा वायाए, ताहिपि भरहो पराजितो एव बाहुजुद्धऽवि पराजितो ताहे मुट्ठिजुद्ध जात तत्थवि पराजितो।

—आवश्यक चूर्णि पृ　२१

२६१　कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पृ　५१३ सारा　न

२६२　पढम दिट्ठीजुद्ध वायाजुद्ध तहेव बाहाहि।
मुट्ठीहि अ दडेहि अ सव्वत्थवि जिप्पए भरहो ॥

—आवश्यक भाष्य गा　३२

२६३　त्रिषष्टि० पर्व १ सर्ग ५

समयसुन्दर[२६४] प्रभृति ने दृष्टि युद्ध, वाग्युद्ध, बाहुयुद्ध, मुष्टि युद्ध और दण्डयुद्ध इन पाँच का वर्णन किया है। सभी में सम्राट् भरत पराजित हुए और बाहुबली विजयी हुए। भरत को अपने लघु भ्राता से पराजित होना अत्यधिक अखरा।[२६५] आवेग में आकर और मर्यादा को विस्मृत कर बाहुबली के शिरश्छेदन करने हेतु भरत ने चक्र का प्रयोग किया। यह देख बाहुबली का खून उबल गया। बाहुबली ने उछलकर चक्र को पकड़ना चाहा, पर चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा कर पुन भरत के पास लौट गया। बाहुबली का बाल भी बाँका न हुआ।[२६६] यह देख सभी सन्न

---

२६४ पचयुद्धानि स्थापितानि (१) दृष्टियुद्ध, (२) वाग्युद्ध, (३) बाहुयुद्ध, (४) मुष्टियुद्ध, (५) दण्ड युद्धानि। एतै पञ्चयुद्धै योजित स जितो ज्ञेय।

—कल्पलता – समयसुन्दर पृ० २१०

(ख) कल्पार्थ बोधिनी पृ० १५१।

(ग) कल्पद्रुम कलिका पृ० १५२।

२६५. सो एव जिप्पमाणो विहुरो अह नरवई विचिंतेइ।
किं मन्ने एस चक्की ? जह दाणि दुब्बलो अहय॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३३

(ख) ताहे सो एव जिव्वमाणो विधुरो अह णरवती विचिंतेति कि मन्ने एस चक्की जह दाणि दुब्बलो अहय, तम्सेव सकप्पे देवता आउह देति डडरयण, ताहे गा तेण गहितेण धावति।

—आवश्यक चूर्णि० २१०

(ग) क्रोधान्धेन तदा द ये, कर्तु मस्य पराजयम्।
चक्रमुत्कृत्तनिःशेषद्विषच्चक्र निरीक्षिना॥
आध्यानमात्रमेत्याराद् अद कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
अवध्यत्वादस्य पर्यन्त तस्थौ मन्दीकृतातपम्॥

—महापुराण, पर्व ३६, श्लो० ६५–६६ भा० २ पृ० २०५

२६६. एव विमृशतस्तक्षशिलाभर्तुरुपेत्य तत्।
चक्र प्रदक्षिणा चक्रमन्तेवासी गुरोरिव॥
न चक्र चक्रिण शक्त, सामान्येऽपि स्वगोत्रजे।
विशेषस्तु चरमशरीरे नरि तादृशे॥

—त्रिषष्टि० १।५।७२२।७२३

रह गये। बाहुबली की विरुदावली से भू-नभ गूँज उठा। भरत अपने दुष्कृत्य पर लज्जित हो गये।[२६७]

इस घटना से क्रुद्ध हो बाहुबली ने भरत पर प्रहार करने के लिए अपनी प्रबल मुट्ठी उठाई। उसे देख लाखो कण्ठो से ये स्वर लहरियाँ फूट पडा—सम्राट् भरत ने भूल की है पर आप भूल न करे। लघु भाई के द्वारा बडे भाई की हत्या अनुचित ही नही अत्यन्त अनुचित है।[२६८] महान् पिता के पुत्र भी महान् होते है। क्षमा कीजिये क्षमा करने वाला कभी छोटा नही होता।

बाहुबली का रोष कम हुआ। उठा हुआ हाथ भरत पर न पडकर स्वय के सिर पर गिरा। वे लुंचन कर श्रमण बन गये।[२६९] राज्य को ठुकराकर पिता के चरण चिह्नो पर चल पडे।[२७०]

सफलता नही मिली

बाहुबली के पैर चलते-चलते रुक गये। वे पिता श्री के शरण मे पहुँचने पर भी चरण मे नही पहुँच सके। पूर्व दीक्षित लघु भ्रातामो को

---

२६७ भरतस्त्व तथा दृष्ट्वा विचार्य स्व कुकर्म च।
बभूव न्यञ्चितग्रीवो विविक्षुरिव मेदिनीम्॥
—त्रिषष्ठि १।५।७४६

२६८ अमर्षाच्चिन्तयित्वेव सुनन्दानन्दना दृढाम्।
मुष्टिमुद्यम्य यमवद् भीषण समधावत॥
करीवोमुद्गरकर कृतमुष्टिकरो द्रुतम्।
जगाम भरताधीशान्तिक तक्षशिलापति॥
—त्रिषष्ठि १।५।७२७-७२८

२६९ इत्युदित्वा महासत्त्व सोऽग्रणी सौम्यकारिणाम्।
तेनैव मुष्टिना मूर्ध्न उद्दध्र तृणवत् कचान्॥
—त्रिषष्ठि १।५।७४

२७ सोऽप्येव चिन्तयामास प्रतिपन्नमहाव्रत।
कि तातपार्श्वपार्श्वमह् बच्छामि सम्प्रति?॥
—त्रिषष्ठि १।५।७४२

नमन करने की बात स्मृति मे आते ही उनके चरण एकान्त शान्त कानन मे ही स्तब्ध हो गये, असन्तोष पर विजय पाने वाले बाहुबली अस्मिता से पराजित हो गये। एक वर्ष तक हिमालय की तरह अटल ध्यान-मुद्रा मे अवस्थित रहने पर भी केवल ज्ञान का दिव्य आलोक प्राप्त नही हो सका। शरीर पर लताएँ चढ गई, पक्षियों ने घोंसले बना लिये, पैर वल्मीको (बाँबियो) से वेष्टित हो गए, तथापि सफलता नही मिली।[२७१]

बाहुबली को केवलज्ञान

एक वर्ष के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव ने बाहुबली मे अन्तर्ज्योति जगाने के लिए ब्राह्मी और सुन्दरी को प्रेषित किया।

---

२७१ पच्छा बाहुबली चितेति—अहं कि तायाए पासं वच्चामि ? इह चेव अच्छामि जाव केवलणाएं उप्पज्जति । एवं सो पडिम ठितो पव्वयसिहरो । सामी जाणति तहवि ण पत्थवेति, अमूढलक्खा तित्थगरा । ताहे संवच्छर अच्छति काउस्सग्गेण वल्लीविताणेण वेढितो पादा य वम्मिएण ।

—आवश्यक चूर्णि—पृ० २१०

(ख) बाहुबली विचिंतेइ—तायसमीवे भाउणो मे लघुतरा समुप्पण्णणाणातिसया ते किह निरतिसओ पेच्छामि ? एत्थेव ताव अच्छामि जाव केवलनाएं समुप्पज्जति, एवं सो पडिमं ठिओ, ठिओ माणपव्वयसिहरे, जाणइ सामी तहवि न पट्ठवेइ, अमूढलक्खा तित्थयरा, ताहे संवच्छरं अच्छइ काउस्सग्गेण, वल्लीविताणेण वेढिओ पाया य वम्मीयनिग्गएहिं भुयंगेहिं ।

—आवश्यक मलयगिरि वृत्ति० प० २३२।१

(ग) शरीरमधिरूढैस्तैर्लतमानैर्भुजंगमैः ।
बभौ बाहुबलिर्बाहुसहस्रमिव धारयन् ॥
पादपद्यं तद्वल्मीकविनिर्यातैर्महोरगैः ।
पादयोर्वेष्ट्यचक्रे स पादकटकैरिव ॥
इत्थं स्थितस्य ध्यानेन तस्यैको वत्सरो ययौ ।
विनाऽऽहारं विहरतो वृषभस्वामिनो यथा ॥

—त्रिषष्टि० १।५।७७६-से ७७८

भगिनीद्वय ने बाहुबली को नमन किया और कहा—'हस्ती पर आरूढ व्यक्ति को कभी केवल ज्ञान की उपलब्धि नही होती अत नीचे उतरो'[२७२]—ये शब्द बाहुबली के कर्ण कुहरों में गिरे, चिन्तन का प्रवाह वदला —कहाँ है यहाँ हाथी ? क्या अभिप्राय है इनका ? हाँ समझा मान हाथी है और मै उस पर आरूढ हूँ। मैं व्यथ ही अवस्था के भेद मे उलझ गया। वे भाई वय मे भले ही मुझ से छोटे है पर चारित्रिक दृष्टि से बडे है। मुझे नमन करना चाहिए। नमन करने के लिए ज्यो ही पर उठे कि बन्धन टूट गये। विनय ने अहकार को पराजित किया। केवली बन गये। भगवान् के चरणो मे पहुँच

---

२७२ पुन्ने सवत्सरे भगव बभी सु दरीओ पत्थवेति। पुव्वि ण पत्थियाओ जेण तदा सम्म ण पडिवज्जिहिति ताहे सो मग्गतीहि वल्लीहि य तणेहि य वेढितेण य महल्लेण कुच्चेण त दट्ठ ण वदितो ताहि, इम च भणितो— ण किर हत्थि विलग्गस्स केवलनाण उप्पज्जइ एव भणिऊण गताओ।

—आवश्यक चूर्णि—प २१०—२११

(ख) पुण्णे य सवच्छरे भगव बभिसु दरीओ पट्ठवेइ पुव्वि नेव पट्ठविया जेण तया सम्म न पडिवज्जइत्ति ताहि सो मग्गतीहि व ल्लीतणवेढिओ दिट्ठो पल्लडेण महल्लेण ग वेण ति। त दट्ठ ण वदिओ इम च भणिओ— न किर हत्थीविलग्गस्स केवल नाण समुप्पज्जइ त्ति भणिऊण गयाओ।

—आवश्यक नि मल वृत्ति प २३२

(ग) निपुण लक्षयित्वा त कृत्वा त्रिश्च प्रदक्षिणाम्।
महामुनि बाहुबलि ते वन्दित्वैवमूचतु ॥
आज्ञापयति तातस्त्वा ज्येष्ठार्य ! भगवानिदम्।
हस्तिस्कन्धाधिरूढानामुत्पद्यत न केवलम् ॥

— त्रिषष्ठि १।५।७८७—७८८

(घ) कल्पलता समय सुन्दर पृ २११।१

(ङ) कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी प १४२

(च) कल्पार्थ बोधिनी पृ १४४—१४५

से करते हुए बताया है कि बाहुबली श्रमण बनकर एक वर्ष तक ध्यानस्थ रहे। भरत के अकृत्य का विचार उनके अन्तर्मानस मे बना रहा। जब एक वर्ष के पश्चात् भरत आकर उनकी अर्चना करते है तब उनका हृदय निःशल्य बनता है और केवल ज्ञान उत्पन्न होता है।[२७४]

अनासक्त भरत

भरत ने अपने भ्राताओ के साथ जो व्यवहार किया था उससे वे स्वय लज्जित थे। भ्राताओ को गँवाकर राज्य प्राप्त कर लेने पर भी उनके अन्तर्मानस मे शान्ति नही थी। विराट राज्य का उपभोग करते हुए भी वे उसमे आसक्त नहीं थे। सम्राट होने पर भी वे साम्राज्यवादी नही थे।

एक बार भगवान् श्री ऋषभदेव अपने शिष्यवर्गसहित विनीता के बाग मे पधारे। जनसमूह धर्मदेशना श्रवण करने को आया। प्रवचन परिषद् मे ही एक सज्जन ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! क्या भरत मोक्षगामी है? वीतराग भगवान् ने कहा—हा। प्रश्नकर्ता ने कहा—आश्चर्य है भगवान् होकर भी पुत्र का पक्ष लेते है।

भरत ने सुना और सोचा—भगवान् पर यह आरोप लगा रहा है। इसे मुझे शिक्षा देनी चाहिए। दूसरे ही दिन उस व्यक्ति को फाँसी की सजा सुना दी गई। फाँसी की सजा सुन वह घबराया भरत के चरणो मे गिरा गिडगिडाया अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

भरत ने कहा—तैल से परिपूरित कटोरे को लेकर विनीता के बाजारो मे घूमो। स्मरण रखना एक बूँद भी नीचे न गिरने पाये। नीचे गिरते ही फाँसी के तख्त पर लटका दिये जाओगे। यदि एक बूँद भी नीचे न गिरेगी तो तुम्हे मुक्त कर दिया जायेगा।

---

२७४ संक्लिष्टो भरताधीश सोऽस्मत्त इति यत्किल।
हृद्यस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजाऽपेक्षि केवलम्॥
—महापुराण जिन ३६।१८६।२१७ द्वि भा

अभियुक्त सम्राट् के आदेशानुसार घूमकर लौट आया।

सम्राट् ने प्रश्न किया—क्या तुम नगर में घूमकर आये हो? अभियुक्त ने विनीत मुद्रा में कहा—हाँ महाराज! सम्राट् ने पुनः प्रश्न किया—नगर में तुमने क्या क्या देखा?

अभियुक्त ने निवेदन किया—कुछ भी नहीं देखा भगवन्!

सम्राट् ने पुनः पूछा—क्या नगर में जो नाटक हो रहे थे वे तुमने नहीं देखे? क्या नगर में जो संगीत मण्डलियाँ यत्र तत्र संगीत गा रही थीं उन्हें तुमने नहीं सुना।

अभियुक्त ने कहा—राजन्! जब मौत नेत्रों के सामने नाच रही हो तब नाटक कैसे देखे जा सकते हैं? और जब मौत की गुनगुनाहट कर्णकुहरों में चल रही हो तब गीत कैसे सुने जा सकते हैं?

सम्राट् ने मुस्कराते हुए कहा—क्या मृत्यु का इतना अधिक भय है?

अभियुक्त ने कहा—सम्राट् को इसका क्या पता? यह तो मृत्यु-दण्ड पाने वाला ही अनुभव कर सकता है।

सम्राट् ने कहा—तो क्या सम्राट् अमर है? उसे मृत्यु का साक्षात्कार नहीं करना पड़ेगा? तुम तो एक जीवन की मृत्यु से ही इतने अधिक भयाक्रान्त हो गए कि आँखों के सामने नाटक होने पर भी नाटक नहीं देख सके और कानों के पास संगीत की सुमधुर स्वर लहरियाँ झनझनाने पर भी संगीत नहीं सुन सके। परन्तु बन्धु, तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिये कि मैं तो मृत्यु की दीर्घपरम्परा से परिचित हूँ अतः मुझे अब साम्राज्य का विराट् सुख भी नहीं लुभा पा रहा है। मैं तन से गृहस्थाश्रम में हूँ, पर मन से उपरत हूँ।

अभियुक्त को अब भगवान् के सत्य कथन पर शंका नहीं रही। उसे अपना अपराध समझ में आ गया। उसे मुक्त कर दिया गया।[२७५]

भरत से भारतवर्ष

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रतापपूर्ण प्रतिभासम्पन्न

२७५ (ख) जैन धर्म और दर्शन—मुनि नथमल पृ० १४

(ग) जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व पृ० १४

भरत एक प्रतिजात पुत्र थ। पिता के द्वारा प्राप्त राज्यश्री को उन्होने अत्यधिक विस्तृत किया और छ खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राद् बने।[276] केवल तन पर ही नहीं अपितु प्रजा के मन पर शासन किया। उनकी पुण्य सस्मृति मे ही प्रकृत देश का नाम भारतवर्प हुआ।

वसुदेव हिंडी[277] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[278] श्रीमद्भागवत[279] वायुपुराण[280] अग्निपुराण[281] महापुराण[282], नारदपुराण[283]

---

२७६ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति भरताधिकार

२७७ तत्य भरहो भरहवासचूडामणी ।
तस्सव नामेण इह भारहवास ति पव्वुचति ॥
—वसुदेवहिण्डी प्र ख पृ १८६

२७८ भरतनाम्नश्चक्रिणो देवा च भारतनाम प्रवृत्त भरतवर्षञ्च तयोर्नाम ।
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति

२७९ यथा खलु महायोगी ज्येष्ठ श्र ष्ठगुण
आसीद्य नेद वष भारतमिति व्यपदिशन्ति ।
—श्री मद्भागवत पुराण स्कध ५ अ ४।९

(ख) अजनाभ नामतद्वप भारतमिति यत आरम्य व्यपदिशन्ति ।
—श्री मद्भागवत ५।७।३। पृ ५६१

(ग) तेषा व भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायण ।
विख्यात वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥
—भागवत ११।२।१७

२८ हिमाह्वय दक्षिण वर्ष भरताय न्यवेदयत् ।
तस्माद् भारत वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥
—वायुपुराण अध्या ३३ श्लो ५२

२८१ भरताद् भारत वर्ष भरतात सुमतिस्त्वभूत् ॥
—अग्निपुराण अ १ श्लो० १२

२८२ तन्नाम्ना भारत वर्षमिति ह्यासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्र रासमुद्राच्च क्षत्र चक्रभृतामिदम् ॥
—महापुराण १५।१५९।३३९

२८३ आसीत पुरा मुनिश्रेष्ठो भरतो नाम भूपति ।
आर्षभो यस्य नाम्नद भारत खण्डमुच्यते ॥
—नारदपुराण अध्या ४८ श्लो ५

विष्णु पुराण[२८४], गरुडपुराण[२८५], ब्रह्मपुराण[२८६], मार्कण्डेय पुराण[२८७], वाराह पुराण[२८८], स्कन्ध पुराण[२८९], लिङ्ग पुराण[२९०], शिवपुराण[२९१], विश्वकोष[२९२] प्रभृति ग्रन्थो के उद्धरणो के प्रकाश मे भी यह

---

२८४ ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठ पुत्रशताग्रज ।
ततश्च भारत वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥
—विष्णुपुराण अश २, अध्या० १ श्लो० ३२

२८५ गरुडपुराण, अध्याय १, श्लो० १३

२८६ सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्र महाप्राव्राज्यमास्थित ।
हिमाह्वय दक्षिण वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ॥
—ब्रह्माण्ड० अ० १४, श्लो० ६१

२८७ अग्निनध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विज ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीर पुत्रशताद् वर ॥
सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्र महाप्राव्राज्यमास्थित ।
तपस्तेपे महाभाग पुलहाश्रमसशय ॥
हिमाह्वय दक्षिण वर्ष भरताय पिता ददौ ।
तस्मात्तु भारत वर्ष तस्य नाम्ना महात्मन ॥
—मार्कण्डेय पुराण ६३।३८-४०

२८८ हेमाद्रे दक्षिण वर्ष महद् भारत नाम शशास ।
—वाराह पुराण अध्याय० ७४

२८९ तस्य नाम्ना त्विद वर्ष भारत चेति कीर्त्यते ।
—स्कन्ध पुराण अध्या० ३७, श्लो० ५७

२९० तस्मात्तु भारत वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधा ।
—लिंग पुराण, अध्याय ४७, श्लो० २४

२९१ तत्रापि भरते ज्येष्ठे खण्डेऽस्मिन् स्पृहलीयके ।
तन्नाम्ना चैव विख्यात खण्ड च भारत तदा ॥
—शिव पुराण, अध्या० ५२

२९२ नाभि के पुत्र ऋषभ और उनके पुत्र भरत थे । भरत ने धर्मानुसार जिस वर्ष का शासन किया उनके नामानुसार वही भारतवर्ष कहलाया ।
—हिन्दी विश्वकोष

स्पष्ट है कि ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही प्रस्तुत देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन [213] का भी यही अभिमत है और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गंगाप्रसाद एम ए [214] व रामधारीसिंह दिनकर [215] का भी यही मन्तव्य है।

कुछ लोग दुष्यन्त पुत्र भरत से भारतवर्ष का नाम सस्थापित करना चाहते है पर प्रबल प्रमाणों के अभाव म उनकी बात किस प्रकार मान्य की जा सकती है। उन्हे अपने मताग्रह को छोड़कर यह सत्य तथ्य स्वीकार करना ही चाहिए कि श्री ऋषभ पुत्र भरत के नाम म ही भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भरत को केवल ज्ञान

दीर्घकाल तक राज्यश्री का उपभोग करने के पश्चात् [भगवान् श्री ऋषभदेव के मोक्ष पधारने के बाद] एकबार सम्राट भरत वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आदर्श (काच) के भव्य भवन मे गये। अगुली मे अगूठी गिर गई जिसम अगुली असुन्दर प्रतीत हुई। भरत के मन म एक विचार आया। अ य आभूषण भी उतार दिए। चिन्तन के आलोक म सोचा—पर-द्रव्यो से ही यह शरीर सुन्दर प्रतीत होता है। कृत्रिम सौन्दर्य वस्तुत सही सौन्दर्य नही है। आत्म

---

२१३ Brahmanical Puranas prove Rishabh to be the father of that Bharat from whom India took to name Bharatvarsha

—Kalpasutra Introd P XVI

२१४ ऋषियों ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा था।

—प्राचीन भारत पृ ५

२१५ भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

—संस्कृति के चार अध्याय पृ १२६

सौन्दर्य ही सच्चा सौन्दर्य है। भावना का वेग बढ़ा, कर्म-मल को धोकर वे केवल ज्ञानी बन गये।[२९६]

श्रीमद् भागवतकार ने सम्राट् भरत का जीवन कुछ अन्य रूप से चित्रित किया है। राजर्षि भरत सारी पृथ्वी का राज भोगकर वन में चले गये और वहाँ तपस्या के द्वारा भगवान् की उपासना की और तीन जन्मों में भगवत्स्थिति को प्राप्त हुए।[२९७]

जैन दृष्टि से भगवान् के सौ ही पुत्रों ने तथा ब्राह्मी सुन्दरी दोनों पुत्रियों ने श्रमणत्व स्वीकार किया और उत्कृष्ट साधना कर कैवल्य

---

२९६ आयंसघरपवेसो भरहे पडणं च अंगुलीअस्स।
सेसाण उम्मुयणं संवेगो नाण दिक्खा य॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ४३६

(ख) अह अन्नया कयाति सव्वालंकारविभूसितो आयंसघरं अतीति, तत्थ य सव्वंगिओ पुरिसो दीसति, तस्स एवं पेच्छमाणस्स अंगुलिज्जगं पडियं, तं च तेण ण णायं पडियं, एवं तस्स पलोएंतस्स जाहे तं अंगुलिं पलोएति जाव सा अंगुली न सोहति तेण अंगुलीज्जएण विणा, ताहे पेच्छति पडियं, ताहे कडगंपि अवणेति, एवं एक्केक्कं आभरणं अवणेंतेण सव्वाणि अवणीताणि, ताहे अप्पाणं पेच्छति उच्चियपउमं व पउमसरं असोभमाणं पेच्छइ। पच्छा भणति—आगंतुगेहिं दव्वेहिं विभूसितं इमं सरीरंति, एत्थ संवेगमावन्नो। इमं न एवं गतं सरीरं, एवं चिंतेमाणस्स ईहावूहा मग्गणगवेसणं करेमाणस्स अपुव्वकरणं झाणं अणुपविट्ठो केवलणाणं उप्पाडेति।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० २२७

(ग) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पृ० २४६।

२९७ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम्।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः॥

—भागवत ११।२।१८ पृ० ७११

प्राप्त किया।[२९८] श्रीमद्भागवत के अभिमतानुसार सौ पुत्रों में से कवि हरि अन्तरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन आविर्होत्र द्रुमिल, चमस, और करभाजन—ये नौ आत्म विद्याविशारद पुत्र वातरशन श्रमण बने।[२९९]

भगवान के संघ में

भगवान् के आध्यात्मिक पावन प्रवचनों को श्रवण करके भगवान् के संघ में चौरासी हजार श्रमण बने।[३००] तीन लाख श्रमणियाँ बनी,[३०१]

---

२९८ आवश्यक नियुक्ति गा ४८–३४६ मल वृ० प २३१–२३२।

२९९ नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिन ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदा ॥
कविर्हरिरन्तरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमस करभाजन ॥

—भागवत ११।२।२०–२१

३०० (क) समवायाङ्ग ८४

(ख) आवश्यक नि गा २७८ मल वृ प २०७

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

(घ) उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइ समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू १९७ पृ ५८

(ङ) त्रिषष्ठि १।६।

३०१ बंभीसुन्दरिपामोक्खाए अज्जियाए तिन्नि सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू १९७ पृ ५८

(ख) आवश्यक मल वृ प २०८ गा २८२

(ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पृ ८७ अमोल

(घ) त्रिषष्ठि १।६

तीन लाख पाँच हजार श्रावक बने[302] और पाँच लाख चोपन हजार श्राविकाएँ हुई ।[303]

भगवान् ऋषभदेव के श्रमण चौरासी भागो मे विभक्त थे। वे विभाग गण के नाम से पहचाने जाते थे। इन गणो का नेतृत्व करने वाले गणधर कहलाते थे, जिनकी सख्या चौरासी थी। श्रमण-श्रमणियो की सम्पूर्ण व्यवस्था इनके अधीन थी।

धार्मिक प्रवचन करना, अन्य तीर्थिक या अपने शिष्यो के प्रश्नो का समाधान करना और धार्मिक नियमोपनियम का परिज्ञान कराना—ये कार्य भ० ऋषभदेव के अधीन थे और शेष कार्य गणधरो के।

गुण की दृष्टि से श्री ऋषभदेव के श्रमणो को सात विभागो मे विभक्त कर सकते है। (१) केवलज्ञानी, (२) मन पर्यवज्ञानी (३) अवधिज्ञानी (४) वैक्रियलब्धिक, (५) चतुर्दशपूर्वी (६) वादी (७) सामान्य साधु।

केवल ज्ञानी अथवा पूर्ण ज्ञानियो की सख्या बीस हजार थी।[304] ये प्रथम श्रेणी के ज्ञानी श्रमण थे। श्री ऋषभदेव के

---

३०२ (क) उसभस्स ण सेज्जसपामोक्खाण समणोवासगाण तिन्नि सयसाहस्सीओ पच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयसपया होत्था।

—कल्पसूत्र० १९७। पृ० ५८

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति० पृ० ८७ अमो०

३०३ उसभस्स ण सुभद्दापामोक्खाण समणोवासियाण पच सयसाहस्सीओ चउप्पन्न च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिया ।

—कल्पसूत्र, सू० १९७ पृ० ५८, पुण्यवि० स०

(ख) समवायाङ्ग।

(ग) लोकप्रकाश।

(घ) आवश्यक निर्युक्ति गा० २८८

३०४ उसभस्सण वीससहस्सा केवलणाणीण उक्कोसिया।

—कल्पसूत्र० सू० १९७ पृ० ५८

समान ही इनको भी पूर्ण ज्ञान था। ये धर्मोपदेश भी प्रदान करते थे।

दूसरी श्रेणी के श्रमण मन पर्यवज्ञानी अर्थात् मनोवैज्ञानिक थे। ये समनस्क प्राणियो के मानसिक भावो के परिज्ञाता थे। इनकी संख्या बारह हजार छह सौ पचास थी।[३०५]

तृतीय श्रेणी के श्रमण अवधिज्ञानी थे। अवधि का अर्थ-सीमा है। अवधिज्ञान का विषय केवल रूपी पदार्थ है। जो रूप रस गंध और स्पर्श युक्त समस्त रूपी पदार्थों (पुद्गलो) के परिज्ञाता थे। इनकी संख्या नौ हजार थी।[३०६]

चतुर्थ श्रेणी के साधक वैक्रियर्द्धिक थे। अर्थात् योगसिद्धि प्राप्त श्रमण थे। जो प्राय तप जप व ध्यान मे तल्लीन रहते थे। इन श्रमणो की संख्या बीस हजार छह सौ थी।[३०७]

पंचम श्रेणी के श्रमण चतुर्दश पूर्वी थे। ये सम्पूर्ण अक्षर ज्ञान मे

(ख) समवायाङ्ग
(ग) लोकप्रकाश

३०५ उसभस्स ण बारससहस्सा छच्च सया पन्नासा विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सन्नीण पंचिंदियाण पज्जत्तगाण मणोगए भावे जाणमाणाण पासमाणाण उक्कोसिया विपुलमइसंपया होत्था।
—कल्पसूत्र सू १९७ पृ ५८-५९
(ख) समवायाङ्ग

३०६ उसभस्स ण नव सहस्सा ओहिनाणीण उक्को।
—कल्प सू १९७ पृ ५८
(ख) समवायाङ्ग।
(ग) लोकप्रकाश।

३०७ उसभस्स ण वीससहस्सा छच्च सया वेउव्वियाण उक्कोसिया।
—कल्पसूत्र-सू ५८

पारगत थे। इनका कार्य था शिष्यो को शास्त्राभ्यास कराना। इनकी सख्या सैंतालीस सौ पचास थी।[308]

छट्ठी श्रेणी के श्रमण वादी थे। ये तर्क और दार्शनिक सिद्धान्तो की चर्चा करने मे प्रवीण थे। अन्य तीर्थियो के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हे आर्हत धर्म के अनुकूल बनाना, इनका प्रमुख कार्य था। इनकी सख्या बारह हजार छह सौ पचास थी।[309]

सातवी श्रेणी मे वे सामान्य श्रमण थे जो अध्ययन, तप, ध्यान तथा सेवा-शुश्रूषा किया करते थे।

इस प्रकार श्री ऋषभदेव की सघ-व्यवस्था सुगठित और वैज्ञानिक थी। धार्मिक राज्य की सुव्यवस्था करने मे वे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र थे। लक्षाधिक व्यक्ति उनके अनुयायी थे और उनका उन पर अखण्ड प्रभुत्व था।

भगवान् श्री ऋषभदेव सर्वज्ञ होने के पश्चात् जीवन के सान्ध्य तक आर्यावर्त मे पैदल घूम-घूमकर आत्म-विद्या की अखण्ड ज्योति जगाते रहे। देशना रूपी जल मे जगत् की दु खाग्नि को शमन करते रहे।[310] जन-जन के अन्तर्मानस मे त्याग – निष्ठा व सयम-प्रतिष्ठा उत्पन्न करते रहे।

निर्वाण

तृतीय आरे के तीन वर्ष और साढे आठ मास अवशेष रहने पर भगवान् दस सहस्र श्रमणो के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ हुए।

---

३०८ उसभस्स ण० चत्तारि सहस्सा सत्त सया पन्नासा चोद्दसपुव्वीण अजिणाण जिणसकासाण उक्कोसिया चोद्दसपुव्विसपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू० १९७ पृ० ५८

३०९ उसभस्स ण वारस सहस्सा छच्च सया पन्नासा वाईण०

—कल्पसूत्र १९५,१९९

३१० वर्षति सिञ्चति देशनाजलेन,

दु खाग्निना दग्ध जगदिति।

चतुर्दश भक्त से आत्मा को तापित करते हुए अभिजित नक्षत्र के योग मे पर्यङ्कासन म स्थित शुक्ल ध्यान के द्वारा वेदनीय कम आयुष्य कम नाम कर्म और गोत्र-कम को नष्ट कर सदा-सर्वदा के लिए अक्षर अजर अमर पद को प्राप्त हुए।[311] जन परिभाषा मे इसे निर्वाण या

---

११ चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइ सव्वाउय पालइत्ता खीणे वयणि-जाउयनामगोत्त इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए बहुविइक्कताए तिहि वासेहि अद्धनवमेहि य मासेहि सेसेहि जेप्प अट्ठावयसेलसिहरसि दसहि अणगारसहस्सेहि सद्धि चोद्दसमेण भत्तण अपाणएण अभिइणा नक्खत्तण जोगमुवागएण पुव्वण्हकालसमयसि सपलियकनिसन्ने कालगए विइक्कते जाव सव्वदुक्खप्पहाणे।

—कल्पसूत्र सू १९९ पृ ५९

(ख) निव्वाणमतकिरिया सा चोद्दसमेण पढमनाहस्स।
सेसाण मासिएण वीरजिणिदस्स छट्ठेण ॥
अट्ठावय-चपु-ज्जेत-पावा-सम्मेयसेलसिहरेसु ।
उसभ वसुपुज्ज नेमी वीरो सेसा य सिद्धिगया ॥

—आवश्यक नियुक्ति गा ३२८–३२९

दसहि सहस्सेहुसभे सेसा उ सहस्सपरिवुडा सिद्धा।

—आवश्यक नि गा० ३३३

(ग) एव च सामी विहरमाणो ओवणग पुव्वसयसहस्स केवलपरियाय पाउणित्ता पुणरवि अट्ठावए पव्वए समोसढो तत्थ चोद्दसमेण भत्तेण पाओवगतो तत्थ माहबहुलतेरसीपक्खेण दसहि अणगारसहस्सेहि सद्धि सपरिवडे सपलियकणिसण्णो पुव्वण्हकाल समयमि अभिइणा णक्खत्तेण सुसमदूसमाए एगूणणउतीहि पक्खेहि सेसाहि खीणे आउग णामे गोत्त वयणिज्जे कालगते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

चुलसीतीए जिणवरो
समणसहस्सेहि परिवुडो भगव।
दसहि सहस्सेहि सम
निव्वाणमणुत्तर पत्ता ॥

—आवश्यक चूर्णि पृ २२१

परिनिर्वाण कहा है। शिव पुराण ने अष्टा पद पर्वत के स्थान पर कैलाश पर्वत का उल्लेख किया है।[312]

भगवान् श्री ऋषभदेव की निर्वाणतिथि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,[313] कल्पसूत्र,[314] त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र[315] के अनुसार माघ कृष्णा

(घ) दीक्षाकालात् पूर्वलक्ष, क्षपयित्वा तत प्रभु ।
ज्ञात्वा स्वमोक्षकाल च, प्रतस्थेऽष्टापद प्रति ।।
शैलमष्टापद प्राप, क्रमेण सपरिच्छद ।
निर्वाणसौधसोपानमिवाऽऽरोहच्च त प्रभु ।।
सम मुनीना दशभि सहस्रै प्रत्यपद्यत ।
चतुर्दशेन तपसा, पादपोपगम प्रभु ।।

—त्रिषष्ठि० १।६।४५६ से ४६१

(ङ) दसहि अणगारसहस्सेहि सद्धि सपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरसि चोद्दसमेण भत्तेण अप्पाणएण सपलिअकासणे निसण्णे पुव्वण्ह कालसमयसि अभिइणा णक्खत्तेणा जोगमुवागएण सुसमदुस्समाए एगूणणवइए पक्खेहि सेसेहि कालगए वीइक्कते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८ पृ० ६१

३१२ कैलासे पर्वते रम्ये,
वृषभोऽय जिनेश्वर ।
चकार स्वावतार च
सर्वज्ञ सर्वग शिव ।।

—शिवपुराण ५६

३१३ जे से हेमताण तच्चे मासे पचमे पक्खे माहवहुले तस्स ण माहवहुलस्स तेरसीपक्खेण ।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८, पृ० ६१

३१४ जे स हेमताण तच्चेमासे पचमे पक्खे माहवहुले तस्स ण माहवहुलस्स तेरसीपक्खेण ।

—कल्पसूत्र, सू० १६६, पृ० ५६

३१५. त्रिषष्ठि० १।६

त्रयोदशी है और तिलोय पण्णत्ति[316] व महापुराण[317] के अनुसार माघकृष्णा चतुर्दशी है।

विज्ञों का मन्तव्य है कि उस दिन श्रमणों ने शिवगति प्राप्त भगवान् की स्मृति में दिन में उपवास रखा और रात्रि भर धर्म जागरण किया। अतः वह तिथि शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुई। शिव, मोक्ष, निर्वाण — ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं।

ईशान संहिता में लिखा है कि माघ कृष्णा चतुर्दशी की महानिशा में कोटिसूर्यप्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव — इस लिंग से प्रकट हुए। जो निर्वाण के पूर्व आदिदेव कहे जाते थे वे अब शिवपद प्राप्त हो जाने से 'शिव' कहलाने लगे।[1]

उत्तर प्रान्त में शिवरात्रि पर्व फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को मनाया जाता है तो दक्षिण प्रान्त में माघकृष्णा चतुर्दशी को। इस भेद का कारण यह है कि उत्तर प्रान्त में मास का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष से मानते हैं और दक्षिण प्रान्त में शुक्ल पक्ष से। इस दृष्टि से दक्षिण प्रान्तीय माघ कृष्णा चतुर्दशी उत्तर प्रान्त में फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी हो जाती है। कालमाधवीय नागर खण्ड में प्रस्तुत मासवैषम्य का समन्वय करते हुए स्पष्ट लिखा है कि दाक्षिणात्य मानव के माघ मास

---

३१६ माघस्स किण्हि चोद्दसि पुव्वण्हे णिययजम्मणक्खत्ते अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओ जोमि।

—तिलोयपण्णत्ति

३१७ घणतुहिणकणाउलि माहमासि सूरुग्गमिक्सणचउद्दसीहि णिव्वुइ तित्थकरि पुरिससीहि।

—महापुराण ३७।३

३१८ माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः।

—ईशान संहिता

के शेष अथवा अन्तिम पक्ष की, और उत्तर प्रान्तीय मानव के फाल्गुन के प्रथम मास की कृष्णा चतुर्दशी शिवरात्रि कही गई है।[319]

पूर्व बताया जा चुका है कि ऋषभदेव का महत्त्व केवल श्रमण परम्परा मे ही नहीं अपितु ब्राह्मणपरम्परा में भी रहा है। वहाँ उन्हें आराध्यदेव मानकर मुक्त कठ से गुणानुवाद किया गया है। सुप्रसिद्ध वैदिक साहित्य के विद्वान् प्रो० विरुपाक्ष एम ए वेदतीर्थ और आचार्य विनोबा भावे जैसे बहुश्रुत विचारक ऋग्वेद आदि मे ऋषभदेव की स्तुति के स्वर सुनते है।+

श्री रामधारीसिंह दिनकर भ० श्री ऋषभदेव के सम्बन्ध में लिखते है—"मोहन जोदडो" की खुदाई मे योग के प्रमाण मिले है। और जैनमार्ग के आदि तीर्थकर श्री ऋषभदेव थे, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसे कालान्तर में शिव के साथ समन्वित हो गई। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानो का यह मानना अयुक्तियुक्त नही दिखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेद पूर्व है।৯

डाक्टर जिम्मर लिखते है—"आज प्राग् ऐतिहासिक काल के महापुरुषो के अस्तित्व को सिद्ध करने के साधन उपलब्ध नही है, इसका अर्थ यह नही कि वे महापुरुष हुए ही नही। इस अवसर्पिणी काल में भोग-भूमि के अन्त मे अर्थात् पाषाणकाल के अवसान पर कृषिकाल के प्रारम्भ मे पहले तीर्थङ्कर ऋषभ हुए। जिन्होने मानव को सभ्यता का पाठ पढाया, उनके पश्चात् और भी तीर्थङ्कर हुए,

---

३१६ माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुनस्य च ।
कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रि प्रकीर्तिता ॥
—कालमाधवीय नागर खण्ड

\+ पूर्व इतिवृत्त—उपाध्याय अमरमुनिजी महाराज, गुरुदेव श्री रत्नमुनि।

৯ आजकल, मार्च १९६२ पृ० ८।

जिनमे से कई का उल्लेख वेदादि ग्रन्थो मे भी मिलता है। अत जैन धर्म भगवान् ऋषभदेव के काल से चला आ रहा है।×

ऋग्वेद मे भगवान् श्री ऋषभ को पूर्वज्ञान का प्रतिपादक और दुःखो का नाश करने वाला बतलाते हुए कहा है— जैसे जल से भरा मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है जो पृथ्वी की प्यास को बुझा देता है उसी प्रकार पूर्वी ज्ञान के प्रतिपादक वृषभ [ऋषभ] महान् है उनका शासन वर दे। उनके शासन मे ऋषि परम्परा से प्राप्त पूर्व का ज्ञान आत्मा के शत्रुओ—क्रोधादि का विध्वसक हो। दोनों [ससारी और मुक्त] आत्माएँ अपने ही आत्मगुणो से चमकती है। अत वे राजा है—वे पूर्ण ज्ञान के आगार है और आत्म-पतन नही होने देते।[3]

वैदिक ऋषि भक्ति-भावना से विभोर होकर उस महाप्रभु की स्तुति करता हुआ कहता है—हे आत्मद्रष्टा प्रभो! परम सुख पाने के लिए मैं तेरी शरण मे आना चाहता हूँ। क्योकि तेरा उपदेश और तेरी वाणी शक्तिशाली है—उनको मैं अवधारण करता हूँ। हे प्रभो! सभी मनुष्यो और देवो मे तुम्ही पहले पूर्वयाया [पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक] हो।[1]

× दी फिलॉसफीज आव इण्डिया पृ २१७ डा जिम्मर।

(ख) अहिंसावाणी वर्ष १२ अक ६ पृ ३७६ डाक्टर कामताप्रसाद के लेख मे भी उद्धृत।

१२ असूतपूर्वा वृषभो ज्यायनिमा अस्य शुरुध सन्ति पूर्वी।
दिवो न पाता विदथस्य धीभि क्षत्र राजाना प्रदिवोदधाथे॥

—ऋग्वेद ५२-१८

१२१ मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामास मानुषीणा विशा दैवी नामुत पूर्वयावा॥

—ऋग्वेद २।३४।२

"आत्मा ही परमात्मा है"[३२२]—यह जैन दर्शन का मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ऋग्वेद के शब्दो मे भगवान् श्री ऋषभदेव ने इस रूप मे प्रतिपादित किया—"मन, वचन, काय तीनो योगो से बद्ध [सयत] वृषभ ने घोषणा की कि महादेव अर्थात् परमात्मा मर्त्यो मे निवास करता है।"[३२३] उन्होने स्वय कठोर तपश्चरणरूप साधना कर वह आदर्श जन-नयन के समक्ष प्रस्तुत किया। एतदर्थ ही ऋग्वेद के मेधावी महर्षि ने लिखा कि—"ऋषभ स्वय आदिपुरुष थे जिन्होने सब से प्रथम मर्त्यदशा मे देवत्व की प्राप्ति की थी।"[३२४]

अथर्ववेद का ऋषि मानवो को ऋषभदेव का आह्वान करने के लिए यह प्रेरणा करता है कि—"पापो से मुक्त पूजनीय देवताओ मे सर्व प्रथम तथा भवसागर के पोत को मै हृदय से आह्वान करता हूँ। हे सहचर बन्धुओ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेज को धारण करो।[३२५] क्योकि वे प्रेम के राजा है उन्होने

---

३२२ जे अप्पा से परमप्पा।

(ख) मग्गण-गुणठाणेहि य,
चउदसहि हवति तह असुद्धणया।
विण्णेया ससारी,
सव्वे सुद्धा हु सुद्धनया॥

—द्रव्यसग्रह १।१३

(ग) सदामुक्त कारणपरमात्मान जानाति।

—नियमसार, तात्पर्यवृत्ति गा० ९६

३२३ त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती।
महादेवो मर्त्या आविवेश॥

—ऋग्वेद ४।५८।३

३२४ तन्मर्त्यस्य देवत्वसजातमग्र।

—ऋग्वेद ३१।१७

३२५ अहो मुच वृषभ यज्ञियाना विराजन्त प्रथममध्वराणाम्।
अपा न पातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण तमिन्द्रिय दत्तमोज॥

—अथर्ववेद कारिका १९।४२।४

उस सघ की स्थापना की है जिसमे पशु भी मानव के समान माने जाते थे और उनको कोई भी मार नही सकता था।[३२६]

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्री ऋषभ का जन्म रजोगुणी जनों को कवल्य की शिक्षा देने के लिए हुआ था।[३२७] जिन्होंने विषयभोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय से भूल बिसरे मानवों का करुणावश निर्भय आत्म-लोक का उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव करने वाले आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के द्वारा सब प्रकार की तृष्णा से मुक्त थे उन भगवान् श्री ऋषभदेव को नमस्कार है।

इस प्रकार हम देखते है कि भागवत में ही नहीं किन्तु कूर्म पुराण मार्कण्डेय पुराण अग्नि पुराण आदि वैदिक ग्रन्थों में उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण गाथाएँ उट्टङ्कित है।

बौद्ध ग्रन्थ आर्य मजुश्री मूलकल्प में भारत के आदि सम्राटों मे नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभ पुत्र भरत की गणना की गई है। उन्होंने हिमालय से सिद्धि प्राप्त की[३२९] वे व्रतों के पालन में दृढ

---

३२६ मास्य पशून् समानान् हिनस्ति।

—अथर्ववेद

३२७ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थम्।

—श्रीमद्भागवत पचम स्कन्ध अध्या ६

३२८ नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्ण
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धे।
लोकस्य य करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै॥

—श्रीमद् भागवत ५।६।१६।१६६

३२९ जैन दृष्टि से सिद्धि-स्थल अष्टापद है हिमालय नही।

—लेखक

थे। वे ही निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ जैनो के आप्तदेव थे।[330] धम्म पद मे ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ वीर कहा है।[331]

भारत के अतिरिक्त बाह्य देशों मे भी भगवान् ऋषभदेव का विराट् व्यक्तित्व विविध रूपो मे चमका है। प्रथम उन्होने कृषिकला का परिज्ञान कराया, अत वे "कृषि देवता" है। आधुनिक विद्वान् उन्ह "एग्रीकल्चरएज" मानते है।[332] देशनारूपी वर्षा करने से वे "वर्षा के देवता" कहे गये हैं। केवल ज्ञानी होने से सूर्यदेव के रूप म मान्य है।

इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व विश्व के कोटि-कोटि मानवो के लिए कल्याणरूप, मगलरूप और वरदानरूप रहा है। वे श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण सस्कृति के आदि पुरुष है। भारतीय सस्कृति के ही नहीं, मानव सस्कृति के आद्य निर्माता है। उनके हिमालयसदृश विराट् जीवन पर दृष्टि डालते-डालते मानव का सिर ऊँचा हो जाता है और अन्तर भाव श्रद्धा से झुक जाता है।



---

३३० प्रजापते सुतो नाभि तस्यापि आगमुच्यति ।
नाभिनो ऋषभपुत्रो वै सिद्धकर्म दृढव्रत ॥
तस्यापि मणिचरो यक्ष सिद्धो हेमवेत गिरो ।
ऋषभस्य भरत पुत्र सोऽपि मजतान तदा जपेत ॥
निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ निर्ग्रन्थ रूपि
आर्यमजु श्री मूलकल्प श्लो० ३९०–३९१–३९२

३३१ उसभ पवर वीर।
—धम्मपद ४२२

३३२ व्हायस ऑव अहिंसा—भ० ऋषभ विशेषाङ्क, ले० डा० कामलिया आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड पृ० ८



आदिम पृथ्वीनाथम्,

आदिम निष्परिग्रहम् ।

आदिम तीर्थनाथं च

ऋषभस्वामिनं स्तुमः ।।

—आचार्य हेमचन्द्र

आदिपुरुष आदीश जिन

आदि सुबुद्धि करतार ।

धर्मधुरन्धर परम गुरु

नमो आदि अवतार ।।

—पाण्डे हेमराज



परिशिष्ट | १

बहत्तर कलाओं के नाम

१ लेह्—लेख लिखने की कला ।
२ गणिय—गणित ।
३ रूव—रूप सजाने की कला ।
४ नट्ट—नाट्य करने की कला ।
५ गीय—गीत गाने की कला ।
६ वाइय—वाद्य बजाने की कला ।
७ सरगय—स्वर जानने की कला ।
८ पुक्खरगय—ढोल आदि वाद्य बजाने की कला ।
९ समताल—ताल देना ।
१ जूय—जूआ खेलने की कला ।
११ जणवाय—वार्तालाप की कला ।
१२ पोक्खच्च—नगर के संरक्षण की कला ।
१३ अट्ठावय—पासा खेलने की कला ।
१४ दगमट्टिय—पानी और मिट्टी के सम्मिश्रण से वस्तु बनाने की कला
१५ अन्नविहि—अन्न उत्पन्न करने की कला ।
१६ पाणविहि—पानी उत्पन्न करना और उसे शुद्ध करने की कला ।
१७ वत्थविहि—वस्त्र बनाने की कला ।
१८ सयणविहि—शय्या निर्माण करने की कला ।
१९ अज्ज—संस्कृत भाषा में कविता निर्माण की कला ।
२ पहेलिय—प्रहेलिका निर्माण की कला ।
२१ मागहिय—छन्द विशेष बनाने की कला ।
२२ गाह—प्राकृत भाषा में गाथा निर्माण की कला ।
२३ सिलोग—श्लोक बनाने की कला ।
२४ गंध जुत्ति—सुगन्धित पदार्थ बनाने की कला ।
२५ मधुसित्थं— मधुरादि छह रस बनाने की कला ।

२६ आभरणविहिं—अलंकार निर्माण की तथा धारण की कला।
२७ तरुणीपडिकम्म—स्त्री को शिक्षा देने की कला।
२८ इत्थीलक्खण—स्त्री के लक्षण जानने की कला।
२९ पुरिसलक्खण—पुरुष के लक्षण जानने की कला।
३० हयलक्खण—घोड़े के लक्षण जानने की कला।
३१ गयलक्खण—हस्ती के लक्षण जानने की कला।
३२ गोलक्खण—गाय के लक्षण जानने की कला।
३३ कुक्कुडलक्खण—कुक्कुट के लक्षण जानने की कला।
३४ मिंढयलक्खण—मेंढे के लक्षण जानने की कला।
३५ चक्कलक्खण—चक्र-लक्षण जानने की कला।
३६ छत्तलक्खण—छत्र-लक्षण जानने की कला।
३७ दण्डलक्खण - दण्ड लक्षण जानने की कला।
३८ असिलक्खण—तलवार के लक्षण जानने की कला।
३९ मणिलक्खण—मणि-लक्षण जानने की कला।
४० कागणिलक्खण—काकिणी-चक्रवर्ती के रत्नविशेष के लक्षण को जानने की कला।
४१ चम्मलक्खण—चर्म-लक्षण जानने की कला।
४२ चदलक्खण—चन्द्र लक्षण जानने की कला।
४३ सूरचरिय—सूर्य आदि की गति जानने की कला।
४४ राहुचरिय—राहु आदि की गति जानने की कला।
४५ गहचरिय—ग्रहों की गति जानने की कला।
४६ सोभागकर—सौभाग्य का ज्ञान।
४७ दोभागकर—दुर्भाग्य का ज्ञान।
४८ विज्जागय—रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विद्या सम्बन्धी ज्ञान।
४९ मंतगय—मन्त्र साधना आदि का ज्ञान।
५० रहस्सगय—गुप्त वस्तु को जानने का ज्ञान।
५१ सभास—प्रत्येक वस्तु के वृत्त का ज्ञान।
५२ चार—सैन्य का प्रमाण आदि जानना।
५३ पडिचार—सेना को रणक्षेत्र में उतारने की कला।
५४ वूह—व्यूह रचने की कला।
५५ पडिवूह—प्रतिव्यूह रचने की कला (व्यूह के सामने उसे पराजित करने वाले व्यूह की रचना)

५६ खधावारमाणं—सेना के पड़ाव का प्रमाण जानना।
५७ नगरमाणं—नगर का प्रमाण जानने की कला।
५८ वत्थमाण—वस्तु का प्रमाण जानने की कला।
५९ खधावारनिवेस—सेना का पड़ाव आदि कहाँ डालना इत्यादि का परिज्ञान।
६ वत्थनिवे स—प्रत्येक वस्तु क स्थापन कराने की कला।
६१ नगरनिवेस—नगर निर्माण का ज्ञान।
६२ ईसत्थ—ईषत् को महत् करने की कला।
६३ छरुप्पवाय तलवार आदि की मूठ आदि बनाने की कला।
६४ आसासिक्ख—अश्व शिक्षा।
६५ हत्थिसिक्ख—हस्ती शिक्षा।
६६ धणुवेय—धनुर्वेद।
६७ हिरण्णपागं सुवण्णपाग मणिपाग धातुपाग—हिरण्यपाक सुवर्णपाक मणिपाक धातुपाक बनाने की कला।
६८ बाहुजुद्ध दडजुद्ध मुटि्ठजुद्ध अट्ठिजुद्ध जुद्ध निजुद्ध जुद्धाइजुद्ध—बाहु युद्ध दण्ड युद्ध मुष्टि युद्ध यष्टि युद्ध युद्ध नियुद्ध युद्धातियुद्ध करने की कला।
६९ सुत्ताखेड नालियाखेड वट्टखेड धम्मखेड चम्मखेड—सूत बनाने की नली बनाने की गद खेलने की वस्तु के स्वभाव जानने की चमड़ा बनाने आदि की कलाए।
७ पत्तच्छेज्ज—क डगच्छेज्ज=पत्र छेदन वृक्षाङ्गविशेष छेदने की कला।
७१ सजीव निज्जीव—सजीवन निर्जीवन।
७२ सउणरुय—पक्षी के शब्द स शुभाशुभ जानने की कला।

(क) समवायाङ्ग सूत्र समवाय ७२
(ख) णायाधम्मकहा सू २१
(ग) राजप्रश्नीय सूत्र पत्र ३४
(घ) औपपातिक सूत्र ४ पत्र १८५
(ङ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका

❁

परिशिष्ट २

चौंसठ कलाओं के नाम

१ नृत्य
२ औचित्य
३ चित्र
४ वादित्र
५ मंत्र
६ तन्त्र
७. ज्ञान
८ विज्ञान
९ दम्भ
१० जलस्तम्भ
११ गीतमान
१२ तालमान
१३ मेघवृष्टि
१४ फलाकृष्टि
१५ आरामरोपण
१६ आकारगोपन
१७ धर्मविचार
१८ शकुनसार
१९ क्रियाकल्प
२० संस्कृत जल्प
२१ प्रासाद नीति
२२ धर्मरीति
२३ वर्णिकावृद्धि
२४ सुवर्णसिद्धि
२५ सुरभितैलकरण
२६ लीलासंचरण
२७ हयगज परीक्षण
२८ पुरुष स्त्रीलक्षण
२९ हेमरत्न भेद
३० अष्टादश लिपि-परिच्छेद
३१ तत्कालबुद्धि
३२ वस्तुसिद्धि
३३ कामविक्रिया
३४ वैद्यक क्रिया
३५ कुम्भभ्रम
३६ सारिश्रम
३७ अंजनयोग
३८ चूर्णयोग
३९ हस्तलाघव
४० वचनपाटव
४१ भोज्यविधि
४२ वाणिज्यविधि
४३ मुखमण्डन
४४ शालिखण्डन
४५ कथाकथन
४६ पुष्पग्रन्थन
४७ वक्रोक्ति
४८ काव्य शक्ति
४९ स्फारविधिवेष
५० सर्वभाषाविशेष
५१ अभिधानज्ञान
५२ भूषणपरिधान

५३	मत्स्योपचार	५९	वीणानाद
५४	गृहाचार	६	वितण्डावाद
५५	व्याकरण	६१	अङ्कविचार
५६	परनिराकरण	६२	लोकव्यवहार
५७	रन्धन	६३	अन्त्याक्षरिका
५८	केशबन्धन	६४	प्रश्नप्रहेलिका

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार २ टीका पत्र १३९–२ १४०–१

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका ।

※

श्री ऋषभदेव के पुत्र और पुत्रियो के नाम

१ भरत
२ बाहुबली
३ शङ्ख
४ विश्वकर्मा
५ विमल
६ सुलक्षण,
७ अमल
८ चित्राङ्ग
९ ख्यातकीर्ति
१० वरदत्त
११. दत्त
१२ सागर
१३. यशोधर
१४ अवर
१५. थवर
१६ कामदेव
१७ ध्रुव
१८ वत्स
१९ नन्द
२० सूर
२१ सुनन्द
२२. कुरु
२३ अग
२४ वग
२५ कोसल
२६ वीर
२७. कलिंग
२८ मागध
२९ विदेह
३० सगम
३१ दशाण
३२ गम्भीर
३३ वसुवर्मा
३४ सुवर्मा
३५ राष्ट्र
३६ सुराष्ट्र
३७ बुद्धिकर
३८ विविधकर
३९ सुयश
४० यश कीर्ति
४१ यशस्कर
४२ कीर्तिकर
४३ सुषेण
४४ ब्रह्मसेण
४५ विक्रान्त
४६ नरोत्तम
४७ चन्द्रसेन
४८ महसेन
४९ सुसेण
५० भानु
५१ कान्त
५२ पुष्पयुत
५३ श्रीधर
५४ दुर्द्धर्ष

५५	सुकुमार	७८	वसु
५६	दुर्जय	७९	सेन
५७	अक्षयमाल	८०	कपिल
५८	सुधर्मा	८१	शैलविचारी
५९	धर्मसेन	८२	अरिञ्जय
६	आनन्दन	८३	कुञ्जरबल
६१	आनन्द	८४	जयदेव
६२	नन्द	८५	नागदत्त
६३	अपराजित	८६	काश्यप
६४	विश्वसेन	८७	बल
६५	हरिषेण	८८	वीर
६६	जय	८९	शुभमति
६७	विजय	९	सुमति
६८	विजयन्त	९१	पद्मनाभ
६९	प्रभाकर	९२	सिंह
७	अरिदमन	९३	सुजाति
७१	मान	९४	सञ्जय
७२	महाबाहु	९५	सुनाभ
७३	दीर्घबाहु	९६	नरदेव
७४	मेघ	९७	चित्तहर
७५	सुघोष	९८	सुखर
७६	विश्व	९९	दृढरथ
७७	वराह	१	प्रभञ्जन+

दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने १ १ पुत्र माने हैं और उनका नाम वृषभसेन दिया है।※

पुत्रियों के नाम—

१—ब्राह्मी।

२—सुन्दरी। 

+ (क) कल्पसूत्र किरणावली पत्र १५१–५२

(ख) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका व्याख्यान ७ पृ ४६८

※ महापुराण पर्व १६ पृ ३४६

परिशिष्ट ४

ग्रन्थ के टिप्पण मे प्रयुक्त ग्रन्थो के नाम

१ आचाराङ्ग सूत्र
२ आवश्यक नियुक्ति—आचार्य भद्रबाहु
३ आवश्यक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
४ आवश्यक नियुक्ति—मलयगिरि वृत्ति
५ आवश्यक भाष्य
६ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
७ आदि पुराण
८ अथर्ववेद
९ अथर्व संहिता
१० उत्तराध्ययन सूत्र
११ उत्तर पुराण
१२ ऋग्वेद
१३ आर्य मंजुश्री मूलकल्प
१४ अग्निपुराण
१५ औपपातिक सूत्र
१६ आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ
१७ अष्टाध्यायी पाणिनि
१८ ईशान संहिता
१९ कल्पसूत्र—आचार्य भद्रबाहु, प० प्र० पुण्यविजय
२० कल्पसूत्र—कल्पार्थबोधिनी
२१ कल्पसूत्र—कल्पसुबोधिका टीका—उपाध्याय विनय विजय
२२ कल्पसूत्र कल्पलता टीका—समय सुन्दर जी
२३ कल्पसूत्र-कल्पद्रुम कलिका—लक्ष्मीवल्लभ
२४ कल्पसूत्र-कल्पसूत्राय प्रबोधिनी—राजेन्द्र सूरि
२५ कल्पसूत्र—मणिसागर
२६ कूर्मपुराण
२७ कालनोक प्रकाश
२८ कालमाधवीय नागर खण्ड

६१ शिवपुराण
६२ प्रभास पुराण
६३ मुनि श्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ—ब्यावर
६४ पुराणसार संग्रह—आ
६५ विशेषावश्यक भाष्यवृ
६६ हिन्दी विश्वकोष—श्री
६७ ऋग्वेद संहिता
६८ शुक्ल यजुर्वेद संहिता
६९ महाभारत
७० भविष्य पुराण
७१ लोक प्रकाश
७२ प्रश्न व्याकरण
७३ तत्त्वार्थ सूत्र
७४ वायु महापुराण
७५ मुण्डकोपनिषद्
७६ महावीर चरियं—गुण
७७ महावीर पुराण—आच
७८ उत्तर पुराण—गुणभद्रा
७९ वसुदेव हिण्डी
८० श्री ऋषभदेव भ० का
८१ नारद पुराण
८२ विष्णु पुराण
८३ गरुड पुराण
८४ मार्कण्डेय पुराण
८५ लिंग पुराण
८६ प्राचीन भारत—गंगा
८७ संस्कृति के चार अध्या
८८ तिलोय पण्णत्ति
८९ नियम
९०

२६ चतुर्विंशतिस्तव
१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
३१ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—टीका
२ जैन रामायण—केशराज जी
३ तत्त्वार्थभाष्य
४ द्रव्य संग्रह
५ चपट पंजरिका—आचार्य शंकर
६ दशवैकालिक चूर्णि—अगस्त्यसिंह चूर्णि
३७ दशवैकालिक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
८ धनञ्जय नाममाला
३९ नारद पुराण
४ त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र—आचार्य हेमचन्द्र
४१ त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र (गुजराती भाषान्तर)
४२ वायु पुराण
४३ ब्रह्माण्ड पुराण
४४ वाराह पुराण
४५ स्कन्ध पुराण
४६ स्थानाङ्ग
४७ स्थानाङ्गवृत्ति
४८ समवायाङ्ग
४९ पउमचरियं—विमल सूरि
५ महापुराण—आचार्य जिनसेन भारतीय ज्ञानपीठ काशी
५१ सिद्धान्त संग्रह
५२ मनुस्मृति
५३ सेनप्रश्न
५४ बुद्धचर्या
५५ ललित विस्तर
५६ भगवती सूत्र
५७ श्रीमद्भागवत
५८ नन्दीसूत्र
५९ प्रश्नव्याकरण
६० बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र—आचार्य समन्तभद्र

९२ बौद्ध धर्म दर्शन
९३ बौद्ध धर्म क्या कहता है ?—कृष्णदत्त भट्ट
९४ औपपातिक सूत्र
९५ *णाया धम्मकहाओ*
९६ मोन्योर मान्योर विलियम सस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी
९७ धम्मपद
९८ अथर्ववेद कारिका
९९ दर्शन और चिन्तन—प सुखलाल जी
१ जनप्रकाश—दिल्ली
१ १ जनधम और दर्शन—प मुनि नथमल जी
१ २ जन दर्शन के मौलिक तत्त्व—प मुनि नथमल जी
१ ३ निशीथ सूत्र भाष्य (चूर्णि सहित)—उपाध्याय अमर मुनि जी
१ ४ अष्टाह्निका कल्प-सुबोधिका—(गुजराती सारा भाई नवाब)
१ ५ गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ आगरा
१ ६ आजकल
१ ७ अणुव्रत (पाक्षिक) दिल्ली

